CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

10·5

श्रुत सप्ताह-नवनीत

5006

प्रकाशक
पन्नालालजी साहित्याचार्य
मंत्री
श्री भारतवर्षीय दि० जैन विद्वत्परिषद्
सागर

रक्षाबन्धन
२४९७ वीरनिर्वाण संवत्

प्रतियाँ १०००

मूल्य एक रुपया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

12006

प्रकाशकीय

आत्महितैषी मानवके लिये वीतराग सर्वज्ञ जिनेन्द्रके द्वारा प्रतिपादित शास्त्रोंका ज्ञान होना कल्याणकारी है। इस ज्ञानके न होनेके कारण ही यह जीव अनादि कालसे पञ्चेन्द्रियोंके विषयोंमें लीन होकर संसारमें परिभ्रमण कर रहा है। स्कूलों तथा कालेजोंमें पढ़नेवाले छात्र प्रायः जैनधर्मके ज्ञानसे वञ्चित रह जाते हैं, अतः उनके लाभार्थ एवं समाजके सभी वर्गोंमें स्वाध्यायकी रुचि बढ़े, इस अभिप्रायसे इस वर्ष भारतवर्षीय दि० जैन परिषद्के पूर्व प्रस्तावानुसार सागर नगरमें जेठ सुदी प्रतिपदासे सप्तमी तदनुसार दि० २५ मईसे ३१ मई तक वर्णीभवन सागरमें श्रुतसप्ताहका आयोजन किया गया था।

सागर समाजकी प्रार्थनाके अनुसार श्री १०५ ऐलक कुन्थुसागर जी, क्षुल्लक सहजानन्दजी (मनोहरलाल जी) वर्णी, श्री ब्र० पं० वंशीधरजी न्यायालंकार इन्दौर, ब्र० राजारामजी भोपाल, पं० वंशीधरजी व्याकरणाचार्य बीना, ब्र० डालचन्द्रजी इन्दौर तथा स्थानीय विद्वान् श्री स्याद्वादवारिधि पं० दयाचन्द्रजी शास्त्री, पं० माणिकचन्द्रजी न्याय-काव्यतीर्थ, पं० दयाचन्द्रजी साहित्याचार्य, तथा पं० धर्मचन्द्रजी शास्त्रीने अपने सारगर्भित प्रवचन देकर आयोजनको सफल बनाया।

इस श्रुतसप्ताहके अन्तर्गत बालक-बालिकाओं एवं प्रौढ़ स्त्री-पुरुषोंने छह ढाला, द्रव्यसंग्रह तथा समयसारका अध्ययन किया। विद्वान् वक्ताओंने अपने प्रवचनोंके द्वारा जो सारगर्भित सामग्री दी थी उसके सारके रूपमें 'श्रुतसप्ताह-नवनीत' का प्रकाशन विद्वत्परि-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

षद्की ओरसे किया जा रहा है। विद्वत्परिषद्की कार्यकारिणीके इस नवनीतकी एक-एक प्रति अपने समस्त सदस्योंके पास फ्री भेजनेका विचार किया है। सदस्योंके अतिरिक्त अन्य महानुभाव भी इससे लाभ उठा सकें इस विचारसे कुछ प्रतियाँ मूल्यसे देनेका भी विचार किया है। आशा है इस प्रकाशनसे जनता यथार्थ लाभ उठावेगी।

ऐसे आयोजन समाजमें सर्वत्र हों और उनके द्वारा लोगोंके हृदयमें जिनवाणीके स्वाध्याय की अभिरुचि जागृत हो, यह इसके प्रकाशनका उद्देश्य है।

श्रुतसप्ताहके समय मैं विद्वानोंके भाषणोंका विवरण लिपिबद्ध करता रहा तथा अधिकांश भाषणकर्ताओंको उनके भाषणोंका लिपिबद्ध विवरण दिखाता रहा इसलिये भाषणोंके विषयमें मैं आश्वस्त हूँ फिर भी त्रुटि रह जाना संभव हैं अतः मैं प्रवक्ताओंसे क्षमा प्रार्थी हूँ।

श्रुतसप्ताहके संचालनमें सागर समाजने तथा इस पुस्तकके प्रकाशनमें चि० श्री राजेन्द्रकुमार सुपुत्र पं० खेमचन्द्रजी सागरने १०१) का आर्थिक सहयोग दिया। इन सबके प्रति मेरा नम्र आभार है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय-सूची

प्रवचनकर्ता	विषय	पृष्ठ
१. पं० वंशीधरजी न्यायालंकार	उद्घाटन-भाषण	१
२. ,, ,,	सत्ता सप्पडिपक्खा	२
३. क्षुल्लक मनोहरलालजी वर्णी	ज्ञान गुणकी गरिमा	२
४. पं० पन्नालालजी साहित्याचार्य	वीतराग विज्ञानका जयघोष	३
५. पं० दयाचन्द्रजी शास्त्री	जीवतत्त्व	५
६. ,, ,,	जैनधर्मके सार्वभौम सिद्धान्त	८
७ पं० वंशीधरजी न्यायालंकार	धर्म और पुण्यका विश्लेषण	९
८. पं० दयाचन्द्रजी शास्त्री	रईस और सईस	११
९. पं० पन्नालालजी साहित्याचार्य	अजीवतत्त्व	१३
१०. पं० मुन्नालालजी समगौरया	जैनसंस्कृतिकी रक्षाके उपाय	१४
११. क्षुल्लक मनोहरलालजी वर्णी	सच्चा शरण	१५
१२. पं० वंशीधरजी न्यायालंकार	सूझ बूझ रीझ	१७
१३. पं० माणिकचन्द्रजी न्यायतीर्थ	निश्चय और व्यवहारका समन्वय	१८
१४. पं० दयाचन्द्रजी शास्त्री	आस्रव तत्त्व	२०
१५. पं० धर्मचन्द्रजी शास्त्री	विश्वशान्तिमें अहिंसाका योगदान	२३
१६. ,, ,,	परम पैनी सुबुधि छैनी	२५
१७. क्षुल्लक मनोहरलालजी वर्णी	उल्लू बनकर रहो	२६
१८. पं० पन्नालालजी साहित्याचार्य	द्रव्यकर्म तथा रागादिका कर्त्ता कौन है ?	

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१९.	पं० वंशीधरजी न्यायालंकार	बन्ध तत्त्व	३०
२०.	पं० दयाचन्द्रजी शास्त्री	ज्ञानपर्व श्रुतपंचमी	३३
२१.	क्षु० मनोहरलालजी वर्णी	धम्मं शरणं पव्वज्जामि	३४
२२.	पं० मुन्नालालजी समगौरया	सम्यक्त्वम्	३५
२३.	पं० माणिकचन्द्रजी	संवरतत्त्व	३८
२४.	पं० पन्नालालजी साहित्याचार्य	स्वाध्यायः परमं तपः	४०
२५.	पं० वंशीधरजी न्यायालंकार	नमस्कारमंत्रके विविधपाठ	४२
२६	क्षु० मनोहरलालजी वर्णी	अध्यवसान	४४
२७.	पं० दयाचन्द्रजी साहित्याचार्य	मुनियोंकी अलौकिक वृत्ति	४५
२८.	पं० वंशीधरजी न्यायालंकार	निर्जरा तत्त्व	४७
२९.	पं० दयाचन्द्रजी साहित्याचार्य	प्रजातंत्रके युगमें समाज व्यवस्था	४८
३०.	पं० वंशीधरजी व्याकरणाचार्य	संकल्प विकल्प	५१
३१.	ब्र० राजारामजी	अरहंतके ज्ञानका फल	५५
३२.	पं० वंशीधरजी न्यायालंकार	मोक्षतत्त्व	५६
३३.	पं० पन्नालालजी साहित्याचार्य	श्रुतसप्ताहका समारोपण भाषण	६२
३४.	पं० वंशीधरजी न्यायालंकार	टेढ़ी खीर और सामला बाजा	६३
३५.		कुछ शंकाओंके समाधान	६७-७१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रुतसप्ताह-नवनीत

श्री अखिल भारतवर्षीय दि० जैन विद्वत्परिषद्के आदेशानुसार, वर्णीस्मारकभवनमें पूज्य वर्णीजीके स्टेच्यूके समक्ष श्रुतसप्ताहका प्रारम्भ जेठसुदी १ संवत् २०२८, तदनुसार दि० २५-५-१९७१ के प्रातःकाल ७ बजे श्री पं० माणिकचन्द्रजीके द्वारा कृत णमोकारमन्त्र और चत्तारिदण्डकके मंगलाचरणपूर्वक हुआ। मंगलाचरणके बाद स्याद्वादवारिधि **पं० वंशीधरजी न्यायालंकार** इन्दौरने घृतका दीपक जलाकर आयोजनका उद्घाटन किया। उद्घाटन भाषणका सार यह है।

उद्घाटन-भाषण

'ज्ञानज्योतिके प्रकाशसे अन्तरात्माका अज्ञानान्धकार दूर होता है। श्रुतसप्ताहके आयोजनके द्वारा उसी ज्ञानज्योतिको प्रकट करनेका प्रयास किया गया है। हमारे बालकोंकी इस ओर रुचि बढ़े, वे जैन तत्त्वज्ञानको सीखें और उसके द्वारा स्वपरका कल्याण करें यही इस आयोजनका उद्देश्य है।'

कक्षाशिबिर

१०५ छात्र-छात्राओंने छहढालामें तथा ६५ छात्र-छात्राओंने द्रव्यसंग्रहकी कक्षामें प्रवेश किया। छहढालाकी कक्षा पं० माणिकचन्द्रजीने और द्रव्यसंग्रहकी कक्षा पं० दयाचन्द्रजी साहित्याचार्य तथा पं० धर्मचन्द्रजी शास्त्री, बी० ए०ने ली। छात्र-छात्राओंके हृदयमें अपूर्व आकर्षण था। सबको पाठ्य-पुस्तकें **समितिकी** ओरसे फ्री दी गई थीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सत्ता सप्पडिपक्खा

८ बजेसे धवल-सिद्धान्तपर श्री **पं० वंशीधरजी न्यायालंकार** इन्दौरका प्रवचन हुआ। मंगलाचरणका अर्थ करनेके बाद आपने सत्ताके स्वरूपपर विशद प्रकाश डालते हुए कहा कि **'सत्ता सप्पडिपक्खा'** सत्ता अपने प्रतिपक्षधर्मसे सहित है। जैनधर्मकी यही खूबी है कि वह प्रतिपक्षीको साथ लेकर चलता है। स्वचतुष्टयकी अपेक्षा जो पदार्थ सत्तारूप है—अस्तित्वधर्मसे सहित है वही पदार्थ परचतुष्टयकी अपेक्षा सत्तारूप नहीं है—नास्तित्वधर्मसे सहित है। किसी पदार्थका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये सबसे पहले उसके सत्ता-गुण पर ही ध्यान दिया जाता है उसके बाद उसकी संख्या, क्षेत्र स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्वपर विचार किया जाता है। 'अस्त्यात्मानादिबद्धः' यहाँ सबसे पहले आत्माका अस्तित्व ही सिद्ध किया गया है।

ज्ञानगुणकी गरिमा

श्री १०५ क्षुल्लक मनोहरलालजी वर्णीने अपने प्रवचनमें कहा कि आत्मामें अनन्तगुण हैं अवश्य, परन्तु उन सबको प्रकाशमें लानेवाला एक ज्ञानगुण ही है। ज्ञान, दीपकके समान स्वपर-प्रकाशक है। यदि यह गुण न हो तो किसी भी गुणके अस्तित्वका बोध नहीं हो सकता। जैसे एक मकानमें सैकड़ों पदार्थ भरे पड़े हैं, परन्तु एक दीपक न हो तो रात्रिमें उनके अस्तित्वका पता कैसे चल सकता है? अनन्तगुणोंमें ज्ञानगुणकी प्रधानताका एक कारण यह भी है कि वे अनन्तगुण इसी ज्ञानगुणके रूपान्तरके समान हैं। जैसे दृढ़ताको लिये हुए जो ज्ञान है वही श्रद्धागुण है, वही सम्यग्दर्शन है। रागादिक विकारीभावोंसे रहित ज्ञानकी जो निर्मल परिणति है वही सम्यक्चारित्र है। अज्ञाननिवृत्तिजन्य आह्लादसे सहित ज्ञानकी जो परिणति है वही सुख कहलाती है। पदार्थोंके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्रहण और धारण करनेमें ज्ञानकी जो क्षमता है वही वीर्य कहलाती है। इस तरह ज्ञानगुण ही सबमें प्रधान दीखता है। इसीलिये आचार्योंने ज्ञानको ही आत्माका लक्षण बताया है और यहाँ तक कह दिया है **'ततो ज्ञानमात्रमात्मा'** अर्थात् ज्ञानमात्र आत्मा है।

आत्मा ज्ञानप्रमाण है, ज्ञान ज्ञेयप्रमाण है, और ज्ञेय लोकालोकप्रमाण है, इस दृष्टिसे आत्मा लोकालोकप्रमाण है। आचार्योंकी यह एक विवक्षा ही है वैसे आत्मा अपने उपात्त शरीरके प्रमाण रहता है। परन्तु लोकालोकके पदार्थोंको जानता है इसलिये ज्ञानकी अपेक्षा उसे लोकालोकप्रमाण कहा जाता है। यह ज्ञानगुणकी ही गरिमा है कि वह आत्माको कर्म, नोकर्म और भावकर्मसे पृथक् अनुभव कराता है।

वीतराग-विज्ञानका जयघोष

रात्रिके ८ बजे पुरुषार्थसिद्ध्युपायका प्रवचन प्रारम्भ करते हुए **पं० पन्नालालजी साहित्याचार्यने** केवलज्ञानरूप परंज्योतिका जयघोष किया तथा केवलज्ञानका स्वरूप बतलाते हुए उसे वीतराग विज्ञान कहा। केवलज्ञानके विषयकी चर्चा करते हुए आपने कहा कि केवलज्ञान अनादिको अनादि और अनन्तको अनन्तरूपसे ही जानता है। केवलज्ञानमें आदि सिद्ध और अन्तसिद्धका बोध नहीं होता और न इससे उसकी सर्वज्ञतामें बाधा आती है। क्योंकि वस्तुस्वरूप जैसा है वैसा ही तो केवलज्ञान जानेगा। प्रत्येक द्रव्यकी अनन्त पर्यायें हो चुकी हैं, एक वर्तमानमें है और अनन्तानन्त भविष्यत्में होनेवाली है। केवलज्ञान उन सबको जानता है परन्तु भूतको भूतरूपमें, भविष्यत्को भविष्यत्रूपमें और वर्तमानको वर्तमानरूपमें जानता है। एक द्रव्यकी वर्तमानमें तो एक ही पर्याय हो सकती है अनन्त या अनन्तानन्त नहीं। अतः केवलज्ञान उन सबको इस रूपमें जानता है कि अमुक द्रव्यकी भूतमें अमुक-अमुक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर्यायें हो चुकी हैं तथा भविष्यमें अमुक अमुक पर्यायें होंगी। वर्तमान तो वर्तमान है ही।

'केवलज्ञान जानता है' इसलिये पदार्थका परिणमन होता है, ऐसी बात नहीं है किन्तु पदार्थका परिणमन अपनी धारासे होता है और केवलज्ञान उसे अनिच्छापूर्वक जानता है। 'केवलज्ञानीने जो जाना है वह अवश्य होगा' ऐसा मानना नियतवाद नहीं है क्योंकि नियतवाद तो पुरुषार्थवादका प्रतिद्वन्द्वी है। पुरुषार्थवादकी मान्यता है कि सब कार्य पुरुषार्थसे ही सिद्ध होते हैं पर नियतवादका कहना है कि जब जो होना है वह होता है। नियतवादको ही दैव-वाद कहते हैं। जब ये दोनों बाद एक दूसरेसे सम्बन्ध छोड़ स्वतन्त्र हो जाते हैं तब वे मिथ्यावादोंमें परिगणित हो जाते हैं। मिथ्या-वादोंमें जिस प्रकार नियतवादको शामिल किया गया है उसी प्रकार पुरुषार्थवादको भी शामिल किया गया है। महान् दार्शनिक विद्वान् समन्तभद्राचार्यने इन दोनों मान्यताओंका समन्वय करते हुए निर्णय दिया है कि जहाँ बुद्धिपूर्वक पुरुषार्थ करनेसे कार्य सिद्ध होता है वहाँ पुरुषार्थकी प्रधानता है और जहाँ अबुद्धिपूर्वक लाभ या हानि होती है वहाँ दैव या नियतिकी प्रधानता है।

परमागमस्य जीवं निषिद्धजात्यन्धसिन्धुरविधानम्।
सकलनयविलसितानां विरोधमथनं नमाम्यनेकान्तम्॥

इस श्लोकका प्रवचन करते हुए अनेक दृष्टान्तोंके द्वारा अने-कान्तका स्वरूप समझाया। पदार्थमें रहनेवाले परस्पर विरोधी दो अन्तों—धर्मोंमेंसे विवक्षानुसार एकको प्रधान और दूसरेको गौण करते हुए ग्रहण करना अनेकान्त है। अनेकान्त, सकलनयोंके विरोधका किस प्रकार मथन करता है यह सिद्ध किया। साथ ही यह भी बताया कि अमृतचन्द्रसूरिने 'पुरुषार्थसिद्ध्युपायकी रचना समयसारादि ग्रन्थोंकी टीकाएं लिखनेके बाद की है। निश्चयनय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रधान समयसारादि ग्रन्थोंमें बहती हुई निश्चयनयकी धारामें समवगाहन कर कोई व्यवहारनयको सर्वथा छोड़ न दे, इस अभिप्रायसे उन्होंने अनेकान्तको नमस्कार किया है। यही नहीं, समयसारादि ग्रन्थोंकी टीकाके प्रारम्भमें भी उन्होंने अनेकान्तकी स्तुति की है।

व्यवहारनिश्चयौ यः प्रबुध्य तत्त्वेन भवति मध्यस्थः।
प्राप्नोति देशनायाः स एव फलमविकलं शिष्यः॥

आदि श्लोकोंके द्वारा व्यवहार और निश्चयनयकी मध्यस्थताका उल्लेख किया।

जीवतत्त्व

श्रुतसप्ताहके सात दिनोंमें क्रमसे जीवादि सात तत्त्वोंके विशिष्ट व्याख्यानकी व्यवस्था की गई। तदनुसार जीवतत्त्वपर व्याख्यान करते हुए **श्री पं० दयाचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्री**, आचार्य गणेश दि० जैन विद्यालय सागरने कहा—

'तस्य भावस्तत्त्वं' इस व्युत्पत्तिके अनुसार पदार्थका जो यथार्थ स्वरूप है वह तत्त्व कहलाता है। जीवनका यथार्थरूप जीवतत्त्व है, अजीवका यथार्थरूप अजीवतत्त्व है। इसी तरह आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्षका जो यथार्थरूप है वह आस्रवादितत्त्व हैं। मूलमें तत्त्व दो ही हैं एक जीव और दूसरा अजीव। इन दो तत्त्वोंका सम्बन्ध जिस कारणसे होता है वह आस्रव कहलाता है। दोनोंके सम्बन्धको बन्ध कहते हैं। आस्रवके अभावको संवर कहते हैं। पूर्वबद्ध अजीव अर्थात् कर्मसमूहके एकदेश क्षयको निर्जरा कहते हैं और सर्वदेश क्षयको मोक्ष कहते हैं। कुन्दकुन्द स्वामीने पुण्य और पापको शामिल कर नौ पदार्थोंका वर्णन किया है परन्तु उमास्वामीने इन्हें आस्रव और बन्धमें समाविष्ट कर तत्त्वोंकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सात संख्या ही स्वीकृत की है। इन सात तत्त्वोंमें आस्रव और बन्ध तो संसारके कारण हैं और संवर तथा निर्जरा मोक्षके कारण हैं। आज जीवतत्त्वके ऊपर विचार करना है।

सात तत्त्वोंमें जीव ही प्रमुख तत्त्व है क्योंकि वही स्वपरावभासी है। दीपकके समान निज और परका प्रकाशक है। 'चेतना लक्षणो जीवः' चेतना जीवका लक्षण है। यह चेतना ज्ञान और दर्शनके भेदसे दो प्रकारकी है। विशेषरूपसे पदार्थको जानना सो ज्ञानचेतना है और निर्विकल्प—सामान्यरूपसे पदार्थको जानना सो दर्शनचेतना है। इसी द्विविध चेतनासे सम्बन्ध रखनेवाला जीवका जो परिणाम है वह उपयोग कहलाता है। उपयोग भी ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोगके भेदसे दो प्रकारका है। इस तरह जानना देखना ही जीवका स्वरूप है। यही इसका विशिष्ट—असाधारण स्वरूप है। यद्यपि अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व और प्रदेशवत्त्व गुण भी जीवमें रहते हैं पर वे साधारण गुण होनेसे जीवके सिवाय अन्य द्रव्योंमें भी पाये जाते हैं अतः उनसे जीवका निर्धार नहीं हो सकता। निर्धार तो विशिष्ट—असाधारण गुणोंसे ही हो सकता है।

यह जीव अमूर्त्तिक है अर्थात् इन्द्रियोंके द्वारा इसका ग्रहण नहीं होता। स्वकीय शरीरमें स्थित जीवका बोध स्वसंवेदन ज्ञानसे होता है। 'मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ, मैंने अमुक कार्य किया है, और अमुक कार्य मुझे करना है' इसप्रकार जो 'मैं' नामकी वस्तु अनुभवमें आती है वही जीव है तथा परकीय शरीरमें उसकी चेष्टाओंके द्वारा जीवका अस्तित्व अनुभवमें आता है।

आचार्योंने जीवके तीन भेद बताये हैं—१ बहिरात्मा, २ अन्तरात्मा और ३ परमात्मा। जो शरीरको ही आत्मा मानता है वह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बहिरात्मा है, वह मूढ़ोंमें मुखिया अर्थात् महामूर्ख कहलाता है, इसीको मिथ्यादृष्टि कहते हैं। इसका विस्तार प्रारम्भसे लेकर तृतीय गुणस्थान तक है। जो शरीर और आत्माको पृथक्-पृथक् अनुभव करता है वह अन्तरात्मा कहलाता है। यह अन्तरात्मा जघन्य, मध्यम और उत्कृष्टके भेदसे तीन प्रकारका कहा गया है। इसका विस्तार चतुर्थसे लेकर बारहवें गुणस्थान तक रहता है। जिसने चार घातिया अथवा आठों कर्म नष्ट कर दिये हैं वह परमात्मा कहलाता है। चार घातिया कर्मोंको नष्ट करनेवाले सकल परमात्मा कहलाते हैं, इन्हें ही अरहंत कहते हैं। यह तेरहवें और चौदहवें गुणस्थानकी अवस्था है। और आठों कर्मोंको नष्ट करनेवाले सिद्ध परमेष्ठी निष्कल परमात्मा कहलाते हैं। यह निष्कल परमात्मा मुक्त कहलाते हैं। सकल परमात्माको जीवन-मुक्त कहते हैं। इन तीन प्रकारकी परिणतियोंमें बहिरात्माको हेय जानकर छोड़ना चाहिये और अन्तरात्मा बनकर उसके माध्यमसे परमात्माका ध्यानकर परमात्मा बननेका पुरुषार्थ करना चाहिये।

यह जीव अनादि कालसे कर्म और नोकर्मके संसर्गमें पड़कर दुखी हो रहा है। इन्हीं कर्मोंके संसर्गसे आत्मामें रागादिक भाव-कर्म उत्पन्न होते हैं जोकि नवीन कर्मबन्धके कारण हैं। मनुष्यभव पाया है तो परसंग छोड़नेका पुरुषार्थ करो, यह पुरुषार्थ इसी मनुष्य पर्यायमें पूर्ण हो सकता है, अन्यत्र नहीं। ज्ञाता-द्रष्टा आत्माका स्वरूप है इसलिये उसी ओर निरन्तर लक्ष्य रखना चाहिये। किसी पदार्थको देखकर यदि राग-द्वेष उत्पन्न होते हैं तो उस समय ऐसा विचार करना चाहिये कि मेरा स्वभाव तो पदार्थको मात्र जानना-देखना है। राग-द्वेष करना नहीं। यह तो विकारी भाव हैं। इन्हें नष्ट करनेसे ही जीव अपने स्वभावमें सुस्थिर हो सकता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैनधर्मके सार्वभौम सिद्धान्त

व्याख्यान-मालाके अन्तर्गत **'जैनधर्मके सार्वभौम सिद्धान्त'** पर प्रकाश डालते हुए **श्री पं० दयाचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्री**ने कहा कि जैनधर्मके सार्वभौम सिद्धान्तोंमें अहिंसा सबसे प्रमुख सार्वभौम सिद्धान्त है—समस्त भूमिका कल्याण करनेवाला सिद्धान्त है। इसका सूक्ष्म-से-सूक्ष्म वर्णन जैनधर्ममें है। यहाँ रागादिक भावोंकी उत्पत्तिको हिंसा और उनकी अनुत्पत्तिको अहिंसा कहा है। आचार्योंने इस अहिंसाको परंब्रह्म कहा है, परंब्रह्मके समान यह प्रत्येक प्राणीका कल्याण करनेवाली है। इस अहिंसाकी साधना, भावोंके ऊपर अधिक निर्भर रहती है। डाकू, डाक्टर और ड्रायवर ये तीन डकार हैं। तीनोंसे हिंसा होती है पर तीनोंके भावोंमें अन्तर होनेसे उसके फलमें भी अन्तर होता है। डाकू जानबूझकर हिंसा करता है इसलिये उसका फल सरकारकी ओरसे फाँसी—मृत्युदण्ड प्राप्त करता है। दवा या आप्रेशन करते हुए डाक्टरसे यदि किसीकी मृत्यु हो जाती है तो उसके फलस्वरूप उस डाक्टरका कुछ भी नहीं होता, क्योंकि उसका भाव रोगीको अच्छा करनेका था, मारनेका नहीं। ड्रायवरसे यदि किसी मनुष्यकी हिंसा होती है तो उसे प्रमादका दण्ड तो मिलता है परन्तु मनुष्यके घात करनेका नहीं। वह सौ पचास रुपयेके जुर्मानेसे ही छुट्टी पा जाता है। ड्रायवरका यह भाव नहीं रहता कि मैं किसीको मारूं परन्तु असावधानी अवश्य की। हमलोग चलते हैं परन्तु चलते समय किसी जीवको मारनेका भाव नहीं रखते, मात्र असावधानी करते हैं और उसीका फल प्राप्त करते हैं।

'म्रियतां जीवो मा वा' जीव मरे अथवा न मरे, परन्तु प्रमादसे चलनेवाले जीवके हिंसा अवश्य आगे दौड़कर आती है। हमलोग जानबूझकर तो किसीकी हिंसा नहीं करते परन्तु प्रमादवश अपने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वारा जीवोंकी हिंसा हो जाती है। ऐसी हिंसासे भी हमें बचना चाहिये। अहिंसा, जैनधर्मका सर्वप्रमुख सिद्धान्त है, सत्यभाषण आदि धर्म, इसीकी साधना करनेवाले हैं। अहिंसाके सिवाय अनेकान्त, अपरिग्रह, तथा स्वतन्त्रता आदि अनेक सिद्धान्त भी सार्वभौम सिद्धान्तोंमें आते हैं। उनका यथासंभव वर्णन किसी अन्य दिन किया जावेगा। वैसे अनेकान्तके ऊपर सांगोपाङ्ग विवेचन अभी आप साहित्याचार्यजीके प्रवचनमें सुन चुके हैं।

धर्म और पुण्यका विश्लेषण

दिनांक २६ मईके प्रातः शास्त्र प्रवचन करते हुए भी पं० **वंशीधरजी न्यायालंकार इन्दौरने** सर्वप्रथम वेद, श्रुति, स्मृति और पुराणके इतिहासपर प्रकाश डालते हुए कहा कि जैनधर्ममें प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग ये चार अनुयोग प्रसिद्ध हैं। चारों अनुयोगोंके स्वाध्यायका फल वीतराग-विज्ञानता प्राप्त करना है। जीवमें ज्ञान तो है पर वह सराग है। किसी वस्तुको देख सुनकर झटसे जीवको रागद्वेष उत्पन्न हो जाते हैं। ग्यारहवें-बारहवें गुणस्थानवर्ती जीवका ज्ञान यद्यपि वीतराग हो चुकता है तथापि वह विज्ञानको प्राप्त नहीं होता। ज्ञानमें विज्ञानता—विशिष्टज्ञानता—पूर्णज्ञानता तो केवलज्ञान होनेपर आती है। चार अनुयोगोंके स्वाध्यायसे हमें यही वीतराग-विज्ञानता प्राप्त करना है। चार अनुयोगोंमें द्रव्यानुयोगका स्वाध्याय सर्वप्रथम आवश्यक है। पश्चात् यदि समय है, साधन हैं तो सभी अनुयोग अध्ययन करनेके योग्य हैं।

मोह और क्षोभसे रहित आत्माकी परिणतिको कुन्दकुन्द स्वामीने धर्म कहा है। यहाँ जीवका वस्तुस्वभावरूप धर्म है। दया, दान आदि शुभाचरणको पुण्य कहते हैं। धर्मका साक्षात् फल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपवर्ग—मोक्ष है और पुण्यका साक्षात् फल स्वर्ग है। जिन आचर्योंने पुण्यको धर्म कहा है उन्होंने कारणमें कार्यका उपचारकर उसे धर्म कहा। पुण्यको हेय बताया जाता है पर वह सर्वथा हेय नहीं है। शुद्धोपयोगकी भूमिकामें रहनेवाले जीवोंकी अपेक्षा पुण्य हेय है परन्तु अशुभोपयोगकी भूमिकामें रहनेवालोंकी अपेक्षा हेय नहीं है, उन्हें उपादेय है। ज्ञानी जीव पुण्यका आचरण करता है परन्तु उसे साक्षात् मोक्षमार्ग नहीं मानता। इसी प्रकार पुण्यके फलका उपभोग भी करता है परन्तु उसे स्वपद नहीं मानता। धर्म और पुण्यके इस अन्तरको ज्ञानी जीव समझता है।

एकत्वविभक्त आत्माकी ओर लक्ष्य करनेसे ही एकत्वविभक्त आत्माकी प्राप्ति होती है। जब तक यह जीव नानात्वके प्रपञ्चमें पड़ा रहता है तब तक इसकी छटनी होती रहती है। एक कूंजड़ी, टोकनीमें आम रखकर बेंच रही थी। ग्राहकके आनेपर वह उससे कहती—भैया, छाँट लो। एक ग्राहक छाँटकर चला जाता। पश्चात् दूसरा ग्राहक आता है वह भी छाँटता है जब तक उस टोकनीमें आम रहते हैं तब तक वे छाँटे जाते रहेंगे। एक रह जानेपर कोई क्या छाँट लेगा। द्रव्यमें नानात्व पर्यायकी दृष्टिसे आता है उन पर्यायोंमें अच्छी और बुरीकी दृष्टिसे छटाई होती है। यदि हमारी दृष्टि पर्यायोंसे हटकर एक द्रव्यकी ओर आकृष्ट हो जाय तो फिर छाँटनेके लिये क्या शेष रह जाता है?

आत्मा ज्ञानानन्द स्वभावसे सम्पन्न है। उसीकी ओर लक्ष्य देना हमारा कर्तव्य है। परपदार्थोंके कर्ता-धर्ता बननेसे कोई सुखी नहीं होता, सिर्फ ज्ञाता-द्रष्टा बननेसे सुखी होता है। नाटकके अन्दर एक तो दर्शक होते हैं और एक एक्टर। एक्टर वह कहलाता है जो तरह-तरहके रूप बदलकर नाटक करता है और दर्शक वह कहलाता है कि जो मजेसे कुर्सीपर बैठकर नाटक देख रहा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विचार करो, इनमें सुखी कौन है ? आनन्द किसे आता है दर्शकको या एक्टरको ? विचार करोगे तो दर्शक ही सुखी जान पड़ेगा, एक्टर तो रूप बदलते-बदलते दुःखका ही अनुभव करता है। कर्तृत्वबुद्धिसे अहंकार बढ़ता है और अकर्तृत्वबुद्धिसे सुख और संतोषकी वृद्धि होती है।

रईस और सईस

रात्रिको ८ बजेसे शास्त्र-प्रवचन करते हुए **श्री पं० दयाचन्दजी सिद्धान्तशास्त्री**ने कहा कि जिस प्रकार कड़ुवी तूँबड़ी किसी कामकी नहीं उसमें यदि कोई चीज रखी जाती है तो वह कड़ुवी हो जाती है। परन्तु वही कड़ुवी तूंबड़ी सूख जानेपर नदीसे पार होनेमें सहायक हो जाती है। इसी प्रकार मनुष्यका शरीर यद्यपि किसी कामका नहीं, मल-मूत्रसे भरा हुआ अशुचिका पिण्ड है तथापि वह संसार-सागरसे पार होनेमें परमसहायक है। मोक्षकी प्राप्ति मनुष्यके शरीरसे ही होती है। देवोंके वैक्रियकशरीरमें यह क्षमता नहीं है कि वह किसी देवको मोक्ष प्राप्त करा सके। यहाँ यह व्याप्ति नहीं है कि जो जो मनुष्य हैं वे सब मोक्षको प्राप्त होते हैं परन्तु यह व्याप्ति है कि जिनको मोक्ष प्राप्त होता है वे मनुष्यशरीरसे ही मोक्ष प्राप्त करते हैं। संसारके समस्त प्राणी सुख चाहते हैं और दुःखसे डरते हैं। आत्मानुशासनमें सुखप्राप्तिका उपाय बतलाते हुए गुणभद्रस्वामीने एक बहुत सुन्दर श्लोक कहा है। वह यह है—

सर्वः प्रेप्सति सत्सुखाप्तिमाचिरात्सा सर्वकर्मक्षयात्
सद्वृत्तात्स च तच्च बोधनियतं सोऽप्यागमात्स श्रुतेः।
सा चाप्तात् स च सर्वदोषरहितो रागादयस्तेऽप्यत-
स्तं युक्त्या सुविचार्य सर्वसुखदं सन्तः श्रयन्तु श्रियै॥

संसारके सभी प्राणी शीघ्र ही सुख-प्राप्तिकी इच्छा करते हैं,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वह सुख-प्राप्ति समस्त कर्मोंके क्षयसे होती है, समस्त कर्मोंका क्षय सम्यक्चारित्रसे होता है, सम्यक्चारित्र तत्त्वज्ञानपर अवलम्बित है, तत्त्वज्ञान आगमसे प्राप्त होता है, आगमकी उत्पत्ति श्रुति—दिव्यध्वनिसे होती है, दिव्यध्वनि आप्तसे होती है, आप्त सर्वदोषोंसे रहित होता है और सर्वदोष रागादिक कहलाते हैं इसलिये सर्वसुखदायक आप्तका युक्तिपूर्वक अच्छी तरह विचारकर सत्पुरुष श्री अर्थात् अन्तरङ्ग बहिरङ्ग लक्ष्मीकी प्राप्तिके लिये उस आप्तका आश्रय लेवें। आप्तका आश्रय लिये बिना यह जीव अनादि कालसे किन-किन पर्यायोंमें भटका है इसका स्मरण आते ही शरीरमें रोमांच हो आता है। कहा है—

कित निगोद कित नारकी कित तिर्यंच अज्ञान।
आज धन्य मनुष्य भयो पायो जिनवर थान॥

इस जीवने निगोदमें, नारकीमें और अज्ञानी तिर्यञ्च अवस्थामें कितना काल बिताया है, इसे कौन कह सकता है? आज धन्य-भाग्य समझना चाहिये कि मनुष्य पर्याय मिली है और उसमें भी जिनेन्द्र भगवान्की शरण प्राप्त हुई है। इस मनुष्यपर्यायका जो सबसे प्रमुख कार्य है उसे अवश्य करना चाहिये। मनुष्यका सबसे प्रमुख कार्य संयम प्राप्त करना है क्योंकि यह मनुष्यको छोड़कर अन्य गतियोंमें नहीं हो सकता है।

दो आदमी हैं—एक घोड़ाकी सेवा करता है उसे सईस कहते हैं। सईस घोड़ाका स्वामी नहीं है। उसे घोड़ा पर बैठनेका अधिकार नहीं है। किन्तु दूसरा आदमी, जो घोड़ाकी सेवा नहीं करता किन्तु स्वामी होनेसे उसपर सवारी करता है उसे रईस कहते हैं। इसीप्रकार एक आदमी शरीरकी सेवा करता हुआ सईस बना रहता है और दूसरा आदमी शरीरसे तपस्या कर उसपर सवारी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करता है वह रईस कहलाता है। बताओ—आप सईस बनना चाहते हैं या रईस ?

अजीव तत्त्व

अजीव तत्त्वका वर्णन करते हुए पं० पन्नालालजीने कहा कि संसारमें एक नहीं पाँच अजीव पदार्थ हैं परन्तु उन सबसे यहाँ तात्पर्य नहीं। किन्तु हमारे ज्ञाता-द्रष्टा स्वभाववाले जीवके साथ मिला हुआ जो नोकर्म, द्रव्यकर्म और भावकर्मरूप अजीव द्रव्य है। उससे तात्पर्य है। कुन्दकुन्द स्वामीने समयसारमें अन्य पदार्थोंका वर्णन करनेके लिये अलग-अलग अधिकार रक्खे हैं परन्तु जीव और अजीवका वर्णन करनेके लिये एक ही 'जीवाधिकार' रक्खा है। इससे सिद्ध होता है कि जीव और अजीव अनादि कालसे संयुक्त दशाको प्राप्त हो रहे हैं। उन्हें अलग-अलग करना हमारे पुरुषार्थका प्रयोजन है। वह पुरुषार्थ भेद-विज्ञानसे ही सफल हो सकता है। १ शरीर हमारा नहीं है, २ ज्ञानावरणादिक द्रव्यकर्म हमारा नहीं है, ३ रागादिक भावकर्म हमारा नहीं है, ४ अनुभाव्य बनकर जो पदार्थ हमारे ज्ञानमें आ रहा है वह हमारा नहीं है और ५ ज्ञेय बनकर हमारे ज्ञानमें आनेवाला घटपटादि पदार्थ भी हमारा नहीं है। इस तरह इन पाँच परपदार्थोंसे आत्माको भिन्न अनुभव करने पर ही भेदविज्ञानकी पूर्णता होती है। इस भेद-विज्ञानकी महिमा बतलाते हुए अमृतचन्द्र सूरिने कहा है—

भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन।
अस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन॥

अर्थात् आज तक जितने सिद्ध हुए हैं वे इसी भेदविज्ञानसे ही सिद्ध हुए हैं और संसारमें जितने बद्ध हैं वे इसी भेदविज्ञानके अभावसे बद्ध हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह अजीव तत्त्व अपने रूपको बदलकर जीवके साथ उस-प्रकार घुलमिल जाता है जिसप्रकार कि अग्नि अपने भास्वररूपको छोड़कर पानीमें मिल जाती है। साधारण आदमी पानीमें मिली हुई अग्निको पानी ही समझने लगता है परन्तु ज्ञानी पुरुष समझता है कि पानी क्या है ? और अग्नि क्या है ? रागादिक, जीवके विभाव बनकर जीवके साथ ऐसे मिल गये हैं कि 'अच्छे-अच्छे लोग भी उन्हें आत्माके मानने लगते हैं परन्तु यथार्थ बात यह है कि रागादिक आत्माके नहीं है अर्थात् आत्माके स्वभाव नहीं है। परके निमित्तसे होनेके कारण विभाव हैं। विभाव वह कहलाता जो स्वमें परके निमित्तसे होता है। और स्वभाव वह है जो आत्मामें स्वतः सिद्ध है। रागादिकका सम्बन्ध तो जब छूटेगा परन्तु 'रागादिक मेरे स्वभाव नहीं हैं' इतनी श्रद्धामात्रसे यह जीव मोक्षमार्गी कहलाने लगता है।

जैन संस्कृतिकी रक्षाके उपाय

व्याख्यानमालाके अन्तर्गत **'जैन संस्कृतिकी रक्षाके उपाय'** इस विषय पर प्रकाश डालते हुए **वाणीभूषण श्री पं० मुन्नालालजी समगौरयाने** कहा कि मन्दिर और मूर्तियाँ ऐसे उपाय हैं कि जिनके द्वारा हजारों वर्षसे जैनधर्मकी संस्कृति प्रकट हो रही है। श्रवण-बेलगोलामें राजा चामुण्डरायके द्वारा निर्मापित भगवान् बाहुबली की प्रतिमा दुनियाँका आठवाँ आश्चर्य माना जाता है। उस मूर्तिके दर्शनमात्रसे जैनधर्ममें प्रतिपादित वीतरागभावकी झलक देखनेको मिलती है।

सीताजीने भारतीय नारी-संस्कृतिका प्राणभूत जो पातिव्रत्य धर्म है उसका कितना जीता जागता उदाहरण प्रस्तुत किया था। भारत सरकार, भारतीय संस्कृतिका संरक्षण करनेके लिये प्रति वर्ष अपने बजटमें दश करोड़का बजट पास करती है। खजराहा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आदि स्थानोंके पुरातत्त्वकी रक्षा करनेके लिये सरकारकी ओरसे पूरा प्रयत्न किया जाता है। वह इसीलिये कि वह पुरातत्त्व हमारी भारतीय संस्कृतिको बतलानेवाला है।

कृति, प्रकृति, विकृति, संस्कृति, आकृति आदि अनेक शब्द प्रचलित हैं। इन सबकी निष्पत्ति कृधातुसे क्तिन् प्रत्यय करने पर होती है परन्तु उपसर्गोंके कारण अर्थभेद हो जाता है। कार्य करने को कृति कहते हैं, वस्तुके स्वभावको प्रकृति कहते हैं, उसमें आये हुए विकारको विकृति कहते हैं, प्रकृतिको प्रकट करनेवाले साधन या उपायोंको संस्कृति कहते हैं और पदार्थके आकारको आकृति कहते हैं। यहाँ हमें प्रकृति और संस्कृति इन दो शब्दों पर ही विचार करना है। जैनधर्ममें मनुष्यकी प्रकृति अर्थात् स्वभावका वर्णन करते हुऐ कहा गया है कि वीतरागविज्ञानता—वीतराग सर्वज्ञता ही उसका स्वभाव है। यही उसकी प्रकृति है। इस प्रकृतिको सिद्ध करने तथा संरक्षण देनेवाले जो निर्माण, आचार तथा वेषभूषा आदि उपाय हैं वे सब जैन संस्कृतिके अन्तर्गत आते हैं।

सच्चा शरण

दिनांक २७ मईको प्रातःकाल प्रवचन करते हुए **श्री १०५ क्षुल्लक मनोहरलालजी वर्णीने** कहा—

सत्यज्ञान, सत्यआनन्द और सत्यपदार्थकी शरण लेनेसे ही जीवको वास्तविक शरण प्राप्त हो सकती है। ज्ञानादिककी सत्यता-को समझनेकेलिये अन्तर्दृष्टिकी आवश्यकता है। अन्तर्दृष्टि प्राप्त होनेसे ही पर्यायकी ओरसे दृष्टि हटती है। बाह्य पदार्थकी शरण लेनेसे सर्वत्र ठोकर ही ठोकर प्राप्त होती है। बच्चे फुटबाल खेलते हैं। एक बच्चेने फुटवालको लातसे ठोकर मारी तो वह फुटवाल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शरण प्राप्त करनेके लिये दूसरे बच्चेके पास गई पर उसने शरण तो नहीं दी, किन्तु लातकी एक ठोकर लगा दी। इसी प्रकार वह फुटवाल जिस जिसके पास गई सभीने उसे छातीसे लगानेके बजाय लातसे ठोकर ही मारी। यह दृष्टान्त है दार्ष्टान्त यह है कि संसारका प्राणी सुखप्राप्तिकी इच्छासे जिस जिस बाह्य पदार्थकी शरण लेता है उसीसे इसे धोखा प्राप्त होता है। धोखेबाज धोखा ही करते हैं। इसलिये उसकी शरण लो जो धोखेबाज न हो। अन्तरात्मा—अपनी शुद्ध आत्मा ही एक ऐसी वस्तु है जिसके पास धोखा नहीं है। जो भी उसका आश्रय लेता है वह नियमसे शरणको प्राप्त होता है। आत्माका शरण लेनेवाला ही सम्यग्दृष्टि होता है।

संसारके अन्य पदार्थोंको सुखका साधन मानते रहोगे तो उन्हींमें उलझे रहोगे, शान्ति प्राप्त नहीं कर सकोगे, बल्कि शान्तिके बदले अशान्ति ही हाथ लगेगी। एक आदमी बड़ा चोर था। एकबार वह राजाकी घुड़शालमें पहुँच गया। वहाँसे एक अच्छा घोड़ा चुरा लाया। किसी दूसरे गाँवमें जाकर वह बेचनेके लिये बाजारमें खड़ा हुआ। उसने सोचा कि यदि मैं घोड़ाकी कीमत कम बताता हूँ तो लोग समझेंगे कि यह चोरीका होगा। इसलिये उसने तीनसौके घोड़ाकी कीमत नौसै रुपये बतलाई। लेनेवाले आते और चले जाते। तौनसौके घोड़ाके नौसै कौन दे? अन्तमें एक ग्राहक आया जो उस चोरका दादा था। वह उसकी बातों और चालढालसे समझ गया कि यह घोड़ा चोरीका है। उसने कहा कि भाई, मैं इसपर सवारी करके देखलूँ यदि मुझे मालूम हुआ तो नौसे ही दूँगा। बेचनेवाला राजी हो गया। खरीददारने अपना हुक्का उसे पकड़ाया और घोड़े पर सवार हो गया। सवार होते ही उसने ऐसी एड़ लगाई कि घोड़ा हवा हो गया। बेचनेवाला तो देखता ही रह गया। पहलेके खरीददारोंने आकर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूछा—भैया, कितनेमें बेच दिया ? उसने गिरे हुए मनसे कहा कि जितनेमें लिया था उतनेमें बेच दिया। फिर मुनाफा क्या हुआ ? उसने हाथका हुक्का दिखाते हुए कहा कि यह हुक्का मुनाफामें मिला है।

यही बात हमलोगोंकी है। बाह्य पदार्थ जैसे आते हैं वैसे चले जाते हैं। नफामें हमें दुःख—संक्लेश छोड़ जाते हैं। इसलिये भाई! यदि सचमुच ही हित चाहते हो तो बाह्य पदार्थोंसे ममता छोड़ो और अपने ज्ञानघन आनन्दसे परिपूर्ण आत्माकी शरण लो। यही सच्ची शरण है। ऐसी भावना करो कि मेरा आत्मा परके अस्तित्व से रहित है। रागादिक विकारी भाव आत्मामें जान पड़ते अवश्य हैं पर वे विभाव हैं, विकार हैं, आत्माके स्वभाव नहीं हैं।

सूझ बूझ रीझ

श्रीमान् पं० वंशीधररजीने प्रातःकालीन प्रवचनमें कहा कि अपना अंगूठा दूसरेके स्पर्शको तो बता देता है पर अपने स्पर्शको नहीं बता सकता। इसी प्रकार चक्षु दूसरेके रूप रंगको बता देती है पर अपना रूप रंग बतानेमें असमर्थ रहती है। स्पर्शन और चक्षु ही नहीं, सभी इन्द्रियाँ बहिर्मुखी हैं, वे अपनेको नहीं देख सकतीं। इन्द्रियोंकी यह बहिर्मुखी प्रवृत्ति दूर हटकर यदि अन्तर्मुखी हो जावे तो इनका बाह्य आश्रय अपने आप छूट जाता है। अन्तर्मुखी दृष्टिवाला सोचता है—

इतो न किंचित्परतो न किंचित्
यतो यतो यामि ततो न किंचित्।
विचार्य पश्यामि जगन्न किंचित्
स्वात्मावबोधादधिकं न किञ्चित्॥

अर्थात् न इधर कुछ है, न उधर कुछ है, जहाँ-जहाँ जाता हूँ वहीं कुछ नहीं है, विचार कर देखता हूँ तो यह जगत् कुछ भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं है, स्वात्मावबोधसे अधिक कुछ भी नहीं है। अज्ञानी मृग, पानीकी तलाशमें इधर-उधर दौड़ता है पर उसे कहीं पानी नहीं मिलता। मरु-स्थलमें पानी हो तो मिले। वहाँ तो मृगतृष्णा है। इसी प्रकार सुखकी चाहमें यह संसारका प्राणी सर्वत्र दौड़ लगाता है पर इसे सुख प्राप्त नहीं होता। संसारमें सुख हो तो मिले। सुख तो आत्माका एक गुण है वह जब भी मिलेगा तब आत्मामें ही मिलेगा, अन्यत्र नहीं।

सूझ, बूझ और रीझ ये तीन शब्द हैं। इनका जो अर्थ है वही तो शास्त्रीय शब्दोंमें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र कहलाता है। आत्मस्वरूपकी ओर अपनी रुचि जागृत होना सूझ कहलाती है। यही सम्यग्दर्शन है, पर पदार्थसे भिन्न और अपने गुणपर्यायोंसे अभिन्न एक अखण्ड ज्ञानघन आत्माकी श्रद्धा होना सम्यग्दर्शन है, इस आत्माका ज्ञान होना—सच्चिदानन्दमय आत्माका बोध होना बूझ है, यही सम्यग्ज्ञान है और उसी आत्मामें जो रीझता है—तल्लीन होता है वही रीझ है, सम्यक्चारित्र है।

दूसरोंको समझानेकी बात छोड़ो, स्वयं समझनेका पुरुषार्थ करो। वर्णीजीने एकबार कहा था—भैया! जहाँ देखो वहाँ सब गुरु ही गुरु मिलते हैं। ऐसा करो, वैसा करो, इस तरह पाठ पढ़ानेवाले ही मिलते हैं पर स्वयं पढ़नेवाले नहीं मिलते। बात सही है, हम विद्वान् लोग ऐसे व्याख्यान देते हैं कि जिन्हें सुनकर दूसरे लोग गद्गद् हो जाते हैं पर हमारी निजकी अन्तरात्मा पर कुछ भी असर नहीं होता। अतः भाई! दूसरोंको समझानेका प्रयास छोड़ो और अपने आपको समझनेका प्रयास करो। इसीमें सच्चा कल्याण है।

निश्चय और व्यवहारका समन्वय

रात्रिको ८ बजे पुरुषार्थसिद्ध्युपायका प्रवचन करते हुए श्री

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पं० माणिकचन्द्रजी न्याय-काव्यतीर्थने निश्चय और व्यवहारनयका स्वरूप बताया। साथ ही यह भी बताया कि निश्चयनय भूतार्थ क्यों है और व्यवहारनय अभूतार्थ क्यों है ? निश्चयनय एक द्रव्यमें दूसरे द्रव्यके आश्रयको स्वीकृत नहीं करता जब कि व्यवहारनय एक द्रव्यमें दूसरे द्रव्यके आश्रयको स्वीकृत करता है। 'पानी ठण्डा है' यहाँ पानीके स्वकीयगुणका कथन है अतः यह निश्चय-नयका दृष्टान्त है और 'पानी गरम है' यहाँ अग्निके आश्रयसे होनेवाली उष्णताका कथन पानीमें किया गया है अतः यह व्यवहार-नयका दृष्टान्त है। आत्मा 'ज्ञायक स्वभाव है' यह आत्माके स्वकीय स्वभावका कथन होनेसे निश्चयनयका विषय है और 'आत्मा क्रोधी या मानी है' यहाँ द्रव्यकर्मके उदयसे होनेवाले विकारको आत्माका कहा है अतः यह व्यवहारनयका विषय है। आचार्योंने पात्रकी योग्यता देखकर कहीं निश्चयनयसे कथन किया है और कहीं व्यवहारनयसे कथन किया है। एक शिष्यके लिये आचार्य आत्माका लक्षण बताते हुए कहते हैं 'जो ज्ञायकस्वभाव हो वह जीव है' और एक शिष्यको आत्माका लक्षण बताते हुए कहते हैं कि 'जो चलता फिरता हो बोलता हो साँस लेता हो' वह जीव है। इन दोनों लक्षणोंमें प्रथम लक्षण तो स्वाश्रित होनेसे भूतार्थ है निश्चय-नयका विषय है परन्तु दूसरे लक्षणमें शरीरकी क्रियाको जीवका लक्षण बताया है अतः अभूतार्थ है और व्यवहारनयका विषय है। परन्तु किया क्या जाय ? 'ज्ञायकस्वभाववाला जीव है' इतना कहने मात्रसे साधारण पुरुष जीवके स्वरूपको नहीं समझ सकता अतः उसे समझानेके लिये आचार्यको व्यवहारनयका आश्रय लेना पड़ता है।

जो मनुष्य निश्चय और व्यवहारके वास्तविक स्वरूपको अच्छी तरह समझकर मध्यस्थ होता है अर्थात् उनमेंसे किसी एकका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एकान्त पक्ष नहीं लेता वही शिष्य जिनेन्द्रकी देशनाका पूर्ण फल प्राप्त कर सकता है और इसके विपरीत जो मात्र निश्चय या मात्र व्यवहारका आलम्बन लेता है वह उपदेशके योग्य नहीं है।

निश्चयमबुध्यमानो यो निश्चयतस्तमेव संश्रयते।
नाशयति करणचरणं स बहिःकरणालसो बालः॥

जो निश्चयको न जानता हुआ निश्चयाभासको ही निश्चय मानकर उसका आश्रय लेता है वह बाह्य आचरणके करनेमें आलसी बालक है—अज्ञानी है और प्रवृत्तिरूप चारित्रको नष्ट कर देता है मोक्षमार्गप्रकाशकमें पण्डितप्रवर टोड़रमल्लजीने निश्चयाभासी, व्यवहाराभासी और उभयाभासी लोगोंका विस्तारसे कथन किया है उसका स्वाध्याय कर लोगोंको अपनी श्रद्धा आगमानुकूल बनाना चाहिये। एक प्राचीन गाथा है—

जइ जिणमअं पवज्जइ तो मा ववहारणिच्छए मुयह।
एकेण विणा छिज्जइ तित्थं अण्णेण पुण तच्चं॥

यदि जिनमतकी प्रवृत्ति करना चाहते हो तो व्यवहार और निश्चयको नहीं छोड़ो, क्योंकि एकके अर्थात् व्यवहारके छोड़नेसे तीर्थ—धर्मकी आम्नाय नष्ट हो जायगी और दूसरे अर्थात् निश्चयके बिना तत्त्व नष्ट हो जायगा। यहाँ निश्चय और व्यवहारमें श्रेष्ठ कौन है? इसकी चर्चा नहीं है। चर्चा यह है कि वस्तुस्वरूपका प्रतिपादन करनेके लिये निश्चय और व्यवहार दोनों नयोंका आलम्बन आवश्यक है।

आस्रवतत्त्व

प्रवचनके बाद आस्रवतत्त्वका वर्णन करते हुए **श्रीमान् पं० दयाचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्रीने** कहा—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्मामें कर्मप्रदेशोंका आस्रवण—आगमन होना आस्रव कहलाता है। कुन्दकुन्दस्वामीने इसके मिथ्यात्व, अविरमण, कषाय और योग ये चार प्रत्यय—कारण बतलाये हैं तथा उमास्वामीने प्रमादको भी शामिल कर पाँच कारण बतलाये हैं। आस्रवके कारणोंमें योगोंकी प्रमुखता है इसीलिये उमास्वामीने **'कायवाङ्-मनःकर्म योगः'** और **'स आस्रवः'** इन सूत्रोंमें योगका लक्षण लिखकर उसे ही आस्रव कहा है। यह योग पहलेसे लेकर तेरहवें गुणस्थान तक चलता है। पं० दौलतरामजीने कहा है—

जो जोगनकी चपलाई तातें ह्वै, आस्रव भाई।
आस्रव दुखकार घनेरे बुधिवंत तिन्हें निरवेरे॥

जो योगोंकी चपलता है उसीसे आस्रव होता है—ये आस्रव अत्यन्त दुःखदायक हैं इसलिये बुद्धिमान् जीव उन्हें दूर करते हैं। जिस प्रकार सछिद्र नौकामें बैठनेवाला मनुष्य अपने इच्छित स्थान पर सकुशल नहीं पहुँच सकता उसी प्रकार आस्रवसे युक्त मनुष्य अपने इच्छित स्थान—मोक्षतक सकुशल नहीं पहुंच सकता। सकुशल क्या, बिलकुल ही नहीं पहुँच सकता।

यह योग शुभ और अशुभके भेदसे दो प्रकारका माना गया है। इनकी परिभाषा लिखते हुए आचार्योंने कहा है कि **शुभ-परिणामनिर्वृतो योगः शुभयोगः'** और **'अशुभपरिणामनिर्वृतो योगः अशुभयोगः'** अर्थात् शुभपरिणामोंसे रचा हुआ योग शुभयोग है और अशुभपरिणामोंसे रचा हुआ योग अशुभयोग है। मात्र मनवचनकायकी शुभ अशुभ प्रवृत्तिसे योगोंमें शुभ अशुभपना नहीं आता है और न पुण्यपाप प्रकृतियोंके बन्धसे ही योगोंमें शुभ अशुभ-का व्यवहार होता है क्योंकि दशमगुणस्थानमें बँधनेवाली सतरह प्रकृतियोंमें पाँच ज्ञानावरणकी, पाँच अन्तरायकी और चार दर्शना-वरणीकी ये चौदह घातियाकर्मोंकी प्रकृतियाँ पापप्रकृतियां हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शुभयोगसे पुण्यकर्मका और अशुभयोगसे पापकर्मका आस्रव होता है यह सामान्य कथन है। इस योगके साथ जब कषायका रंग रहता है तब वह साम्परायिक आस्रवका कारण होता है। संपरायका अर्थ संसार है जिस आस्रवका फल संपराय है वह साम्परायिक आस्रव कहलाता हैं। यह सांपरायिक आस्रव प्रारम्भसे लेकर दशम-गुणस्थानतक होता है। ईर्यापथ आस्रव कषायरहित जीवोंके होता है। यह ग्यारहवेंसे लेकर तेरहवें गुणस्थान तक होता है। ईर्यापथ आस्रवके बाद स्थिति और अनुभाग बन्ध नहीं होता।

जोगा पयडिपदेसा ठिदिअणुभागा कसायदो होंति।
अपरिणदुच्छिण्णेसु य बंधट्ठिदिकारणं णत्थि॥

योगके निमित्तसे प्रकृति और प्रदेशबन्ध होते हैं और स्थिति तथा अनुभागबन्ध कषायके निमित्तसे होते हैं। अपरिणत—उपशान्त दशा और उच्छिन्न—क्षीणदशामें स्थितिबन्धके कारण नहीं हैं।

जिनेन्द्र भगवान्‌के वचनरूपी औषध, विषयसुखका विरेचन करनेवाली है अतः उसका स्वाध्यायकर ज्ञानको परिपक्व बनाना चाहिये और चारित्र धारणकर उसे सफल करना चाहिये। क्योंकि चारित्रहीन ज्ञान कागजका गुलदस्ता है जिसमें गन्धका नाम भी नहीं है। सम्यग्दर्शनसे मोक्षमार्ग शुरू होता है और सम्यक्‌चारित्रसे उसकी पूर्णता होती है। सम्यक्‌चारित्र संवर निर्जरा और मोक्षका कारण है।

मनुष्य बड़े-बड़े मनसूबे बनाता है—'मैं यह करूंगा, वह करूंगा' इन्हीं संकल्पोंके जालमें फँसा हुआ एक दिन मृत्युको प्राप्त हो जाता है। **'तृणं लुनाति दात्रेण सुमेरुं याति चेतसा'** कोई मनुष्य हँसियासे घास काटता है पर चित्तसे सुमेरुपर चढ़ता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थात् परिस्थिति तो साधारण होती है पर संकल्प विकल्प ऐसे करता है कि जिनकी पूर्ति होना जीवनमें कठिन होता है।

आस्रव और बन्ध तत्त्वके निर्धारमें बड़े-बड़े ज्ञानी जीव चूक जाते हैं। जिन भावोंसे होता तो आस्रव और बन्ध है उन भावोंको यह जीव संवर और निर्जराका कारण मान बैठता है। पर स्वयं मान बैठनेसे आस्रव और बन्ध रुकते नहीं हैं। अतः इन भावोंका निर्धार ठीक-ठीक करना चाहिये।

विश्वशान्तिमें अहिंसाका योगदान

व्याख्यानमालाके अन्तर्गत **'विश्वशान्तिमें अहिंसाका योगदान'** विषय पर बोलते हुए **श्री पं० धर्मचन्द्रजी शास्त्री, बी० ए०** ने कहा—

विश्वमें शान्ति अहिंसासे ही कायम हो सकती है। हिंसासे आतंक पैदा होता है। आतंकसे यद्यपि कुछ समयके लिये शान्ति दिखाई देती है तथापि अनुकूल अवसर आने पर पुनः अशान्ति उभर आती है। पूर्वी बंगालमें लाखों निरपराध लोगोंकी हिंसा कर दी गई इससे एशियाका वातावरण अशान्त हो गया। भारत और पाकिस्तानके बीच युद्धके बादल मंडराने लगे।

सच्चा अहिंसक वही बन सकता है जो 'अहम्'को समाप्त कर देता है। 'अहम्' अहंकारको कहते हैं। अहंकारसे क्रोध उत्पन्न होता है और क्रोधसे हिंसा जागृत होती है। पृथिवी पर जिन्होंने जन्म लिया है उन्हें सुख-शान्तिसे जीनेका अधिकार है उनके इस मौलिक अधिकारको छीनना हिंसा है।

आज भोजन, वस्त्र और आवासकी समस्या प्रत्येक मानवके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सामने है। इन्हींका समाधान प्राप्त करनेके लिये मनुष्य रात-दिन प्रयत्न करता है। इस प्रयत्नमें यदि मानव, दूसरे मानवके अधिकारको न छीने तथा उसकी सुख-सुविधाका ध्यान रक्खे तो कभी अशान्ति पैदा नहीं हो सकती। परन्तु स्वार्थका अन्धा—मनुष्य, अपने स्वार्थके पीछे दूसरेकी सुख-सुविधाओंको छीननेमें कोई कसर नहीं कर रहा है। इसलिये वह स्वयं दुखी रहता है और दूसरोंको भी दुखी करता है।

भरत और बाहुबलीका जो युद्ध हुआ था उसमें दोनोंका 'अहम्' ही कार्य कर रहा था। भरत चाहते थे कि हमारा शासन भारतवर्षकी छह खण्ड वसुधामें अखण्डरूपसे प्रसारित हो और बाहुबली चाहते थे कि जिसप्रकार भरत, भगवान ऋषभदेवके पुत्र हैं उसी तरह मैं भी तो उनका पुत्र हूँ। फिर भरत शासक बनें और मैं उनके आधीन, यह कैसे हो सकता है? युद्धका अवसर आया देख, उनके मन्त्रियोंने विचार किया कि भाई-भाईकी लड़ाई है और दोनों ही चरम शरीरी हैं अतः इनका घात तो होगा नहीं परन्तु निरपराध प्रजा मारी जावेगी। ऐसा विचारकर मन्त्रियोंने प्रस्ताव किया कि आप दोनों भाई ही शक्तिका परीक्षण कर अपनी विजयका निर्णय करा लें। वह भी दृष्टि, जल और मल्लयुद्धके द्वारा, हिंसक युद्धसे नहीं। बाहुबली तीनों युद्धोंमें विजयी हुए फिर भी भरतने कुपित होकर बाहुबली पर चक्र चला दिया। क्रोधकी बड़ी महिमा है, उसके आवेगमें मनुष्य सब विवेक भूल जाता है। यही बात कौरव और पाण्डवोंके युद्धकी रही। राज्य-सत्ता प्राप्त करनेका 'अहम्' ही महाभारत युद्धका सूत्रपात करता है। आजके नेताओंमें भी क्या हो रहा है? वे भी अपनी कुर्सीको सुरक्षित रखनेके उद्देश्यसे रातदिन उखाड़-पछाड़में लगे हुए हैं। विश्वमें शान्ति कैसे हो? अधिकारियोंका सत्ता-सम्बन्धी उन्माद शान्त हों तभी शान्ति हो सकती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परमपैनी सुबुधि छैनी

दिनांक २८ मईके प्रातःकालीन प्रवचनमें पं वंशीधरजी इन्दौरने भेदज्ञानकी महिमा बताते हुए कहा कि—

मत्स्या अपि विजानन्ति नीरक्षीरविवेचनम्।
प्रसिद्धिरेव हंसस्य यशः पुण्यैरवाप्यते॥

दूध और पानीको पृथक् करना मत्स्य भी जानते हैं परन्तु प्रसिद्धि हंसकी ही है क्योंकि यश पुण्यसे प्राप्त होता है।

यहाँ भेदविज्ञान किनमें होता है, किनमें नहीं होता है इसकी चर्चाको गौण कर यही चर्चा करना है कि भेदविज्ञान क्या है? परस्पर तन्मयी भावसे मिली हुई दो वस्तुओंको पृथक्-पृथक् जानना भेदविज्ञान है। इस जीवकी ज्ञानधारा अनादिकालसे मोहसे मिश्रित होकर तन्मयीभावको प्राप्त हो रही हैं। जहाँ ज्ञान हुआ वहाँ झटसे रागद्वेष या इष्ट-अनिष्टकी बुद्धि सामने आती है इससे साधारण जनको जान पड़ता है कि ज्ञानधारा और रागधारा एक ही है दो, नहीं हैं। परन्तु विवेकीजन भेदविज्ञानके द्वारा जानते हैं कि यह तो ज्ञानधारा है और यह रागधारा है। ज्ञानधारा स्वाभाविक है और रागधारा वैभाविक है। इन दोनों धाराओंको अलग-अलग करनेवाली छैनी सुबुद्धि छैनी है।

जिन परमपैनी सुबुधिछैनी डार अन्तर भेदिया।
वरणादि अरु रागादि तैं निजभावको न्यारा किया॥

जिन्होंने अत्यन्त तीक्ष्ण भेदविज्ञानरूपी छैनीको बीचमें डालकर ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म और रागादि भावकर्मसे अपने आपको जुदा कर लिया है वे ही भेदविज्ञानी जीव हैं, वे ही स्वभावको प्राप्त कर सकते हैं। इस भेदविज्ञानकी भावना कबतक करते रहना चाहिये, इसका उत्तर अमृतचन्द्रसूरिने दिया है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावयेद्भेदविज्ञानमिदमच्छिन्नधारया ।
यावत्तावत्पराच्च्युत्वा ज्ञानं ज्ञाने प्रतिष्ठते ॥

अनवरतरूपसे इस भेदविज्ञानकी तब तक भावना करते रहना चाहिये जब तक कि ज्ञान परसे हटकर ज्ञानमें ही प्रतिष्ठित होता है।

उल्लू बनकर रहो

श्री १०५ क्षुल्लक मनोहरलालजीने अपना प्रवचन प्रारम्भ करते हुए कहा—एक सन्तका कहना है कि जगत्में सुख चाहते हो तो उल्लू बनकर रहो। शब्द सुननेमें अटपट्टा लगता है पर भाव इसका अच्छा है। उल्लूका क्या स्वभाव है? दिनमें अन्धा रहना अर्थात् किसीको नहीं देखना। जो जीव दूसरे पदार्थोंकी ओर न देख कर अपने स्वरूपकी ओर देखते हैं वे कल्याणके पात्र होते हैं। संस्कृतमें उल्लू शब्दकी व्युत्पत्ति है **'उत्-उत्कृष्टं लुनाति-छिन्दति इति उल्लूः'** जो उत्कृष्ट रूपसे कर्मशत्रुओंको छेदे वह उल्लू हैं। कर्मशत्रुओंको वही छेद सकता है जिसकी दृष्टि पर पदार्थसे हटकर स्वरूपमें रम गई है। कितना बढ़िया उल्लू शब्दका अर्थ है? अब तो उल्लू बनना चाहोगे? (हास्य) इस जीवने अनादिकालसे परको देखनेका ही प्रयास किया है स्वरूपकी ओर तो आज तक यह झांका ही नहीं है। अहो! मैं ज्ञानादि अनन्त गुणोंका भाण्डार होकर भी दर-दरका भिखारी बना फिरता हूँ, अपने गुणोंकी ओर लक्ष्य नहीं देता। श्री गुरु मुझे मेरी निधिका बोध कराते हुए कहते हैं कि अरे भाई तूँ तो अपरिमित निधिका स्वामी है दरिद्र बनकर क्यों भटक रहा है।

मनुष्य भव मिला है तो उससे उसका काम लो। मनुष्य भव पवित्र काम करनेके लिये है विषय-कषायकी पूर्तिके लिये नहीं,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्योंकि यह कार्य तो देव और तिर्यञ्चमें भी हो सकते हैं। इस ओर लक्ष्य करो तो कोई कठिनाई नहीं। सरलतासे स्वरूपका बोध हो सकता है। पूज्य वर्णीजी कहा करते थे—**'सांभर दूर सिमरिया नियरी'**। सांभरके एक व्यापारीको सिमरियामें रहने वाले किसी व्यक्तिसे रुपया लेने थे। वह एक आदमीको साथ लेकर तगादेके लिये निकला। परन्तु सिमरिया बहुत दूर थी, दो तीन चलते चलते वह घबड़ा गया और साथीसे बोला कि 'मुझसे नहीं चला जाता। चूल्हेमें गये रुपये वापिस सांभरको लौट चलो' साथी समझदार था, उसने कहा कि **'सांभर दूर सिमरिया नियरी'**। सेठजी अब तो सांभर दूर है और सिमरिया पास है? सेठने कहा कि क्या पास है? चलते चलते तो पैर दुखने लगे। साथीने कहा कि आप सिमरियाका लक्ष्य बनाकर चले हैं इसलिये उसे पास समझना चाहिये और सांभरको छोड़कर आये हैं इसलिये उसे दूर समझना चाहिये। दृष्टान्त तो दृष्टान्त ही है। दार्ष्टान्त यह है कि जिस बात-का लक्ष्य बना लिया जाय वह सरल हो जाती है।

द्रव्यकर्म तथा रागादिका कर्ता कौन है?

रात्रिके ८ बजेसे पुरुषार्थसिद्ध्युपायके

जीवकृतं परिणामं निमित्तमात्रं प्रपद्य पुनरन्ये।
स्वयमेव परिणमंतेऽत्र पूद्गलाः कर्मभावेन॥
परिणममानस्य चितः स्वयमपि रागादिभिः स्वकैर्भावैः।
भवति हि निमित्तमात्रं पौद्गलिकं कर्म तस्यापि॥

इन श्लोकोंका प्रवचन करते हुए **पं० पन्नालालजीने** कहा कि जीवके द्वारा किये हुए रागादि भावोंको निमित्तमात्र प्राप्तकर पुद्गलद्रव्य स्वयं कर्मरूप परिणमते हैं और रागादिक भावरूप

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वयं परिणमते हुए जीवके लिये पौद्गालिक कर्म निमित्त मात्र होते हैं।

इन श्लोकोंका उद्भव समयसारकी निम्न गाथासे हुआ है

जीवपरिणामहेदुं कम्मत्तं पुग्गला परिणमंति
पुग्गलकम्मणिमित्तं तहेव जीवो वि परिणमइ॥

अर्थात् जीवके परिणामरूप हेतुको पाकर पुद्गल, कर्मरूप परिणमन करते हैं और पुद्गलकर्मका निमित्त पाकर जीव भी, रागादि परिणमन करता है।

उपर्युक्त श्लोंकों तथा गाथाके अर्थ पर प्रकाश डालते हुए निमित्त-नैमित्तिकभाव, उपादानोपादेयभाव और कर्तृकर्मभावपर चर्चा की गई। जो कार्यरूप परिणत न होता हुआ उसकी उत्पत्ति-में सहायक होता है उसे निमित्त कहते हैं। यह निमित्त, अन्तरङ्ग और बहिरङ्गके भेदसे दो प्रकारका होता है। जैसे सम्यग्दर्शनकी उत्पत्तिमें मिथ्यात्वादि सात प्रकृतियोंका उपशम, क्षय, या क्षयोपशम अन्तरङ्ग निमित्त है तथा सद्गुरुकी देशना आदि बहिरङ्ग निमित्त हैं। इन दो प्रकारके निमित्तोंसे जो कार्य होता है वह नैमित्तिक कहलाता है। जो स्वयं कार्यरूप परिणत होता है वह उपादान कहलाता है और उससे जो कार्य होता है वह उपादेय कहलाता है। चूँकि उपादान उपादेयरूप परिणमता है इसलिये वह एक द्रव्यमें ही बनता है। जैसे मिट्टी घटका उपादान कारण है और घट उपादेय। व्यापकको कर्ता और व्याप्यको कर्म कहते हैं। जैसे मिट्टी कर्ता है और घट कर्म है। यहाँ मिट्टी व्यापक है और घट व्याप्य है। यह व्याप्य-व्यापकभाव भी उपादानोपादेय भावके समान एक द्रव्यमें ही बनता है।

यहाँ चर्चा है कि कर्म का कर्ता कौन है? उसका उत्तर दिया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गया है कि कर्मका उपादानकारण पुद्गल द्रव्य है और निमित्त कारण जीवके किये हुए रागादिभाव हैं। **'सामग्री जनिका कार्यस्य'** इस सिद्धान्तके अनुसार उपादान और निमित्तकारणरूप सामग्री ही कार्यकी जनक है। न अकेला उपादानकारण कार्यका जनक है और न अकेला निमित्तकारण। इसी प्रकार दूसरी चर्चा है कि रागादिका कर्ता कौन है? उसका उत्तर दिया गया है कि रागादिका उपादान कारण जीव है और निमित्तकारण पौद्गलिक कर्मकी उदयावस्था। इन दोनों कारणोंके मिलने पर ही कार्यकी उत्पत्ति होती है। उपर्युक्त दोनों श्लोकोंमें निमित्तशब्दके साथ जो मात्र-शब्दका प्रयोग किया गया है वह निमित्तकी मर्यादाको सूचित करता है अर्थात् निमित्त, सदा निमित्त ही रहता है कार्यरूप परिणत नहीं होता।

आज कितने ही लोग अपनी एकान्त उपादानकी मान्यता सिद्ध करनेके लिये यहाँ तक कहने लगे हैं कि आत्मामें रागादिक अपनी योग्यतासे स्वयं होते हैं उनमें द्रव्यकर्मका उदय कारण नहीं है परन्तु वे यह भूल जाते हैं कि यदि रागादिकको अनिमित्तक माना जायगा तो वे ज्ञानादिककी तरह स्वभावकोटिमें आनेसे नित्य हो जावेंगे पर ऐसा प्रत्यक्षविरुद्ध है। रागादिक विभाव भावोंकी उत्पत्तिके विषयमें पञ्चाध्यायीकारने स्पष्ट लिखा है—

बीजं विभावभावाः स्वपरोभयहेतवस्तथा नियमात्।
सत्यपि शक्तिविशेषे न परनिमित्ताद्विना भवन्ति यतः ॥५५०॥

अर्थात् जितने भी विभाव भाव होते हैं वे नियमसे स्व और पर दोनोंके निमित्तसे होते हैं क्योंकि द्रव्यमें विभावरूपसे परिणमन करनेकी शक्तिविशेषके रहते हुए भी वे परनिमित्तके बिना नहीं होते।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपादान और निमित्तकी इतनी स्पष्ट व्याख्याके होते हुए भी लोग, न जाने क्यों वस्तुतत्त्वको तोड़नेका प्रयत्न करते हैं ?

बन्धतत्त्व

बन्धतत्त्वपर व्याख्यान करते हुए **श्री पं वंशीधरजी इन्दौरने** कहा—

जैनागममें निश्चय और व्यवहार इन दोनों नयोंका वर्णन आता है। परन्तु वे ३६के अंकके समान एक दूसरेके विपरीत हैं। निश्चय जिसे कहता है व्यवहार उसका निषेध करता है और व्यवहार जिसे कहता है निश्चय उसका विरोध करता है। एक गाँवमें एक हरली महाराज रहते थे। वहीं एक ऐसे भी व्यक्ति रहते थे जो हरली महाराजका हमेशा विरोध किया करते थे। अर्थात् हरली महाराज जो कहें उससे विपरीत काम करना उनका कार्य था। एक दिन उन महाशयके मुखसे सुपारीका टुकड़ा बाहर निकल गया। अब उसे उठाकर खावें या नहीं, यह विचार उत्पन्न हुआ। हरली महाराजसे इसका निर्णय पूछा गया तो उन्होंने कहा कि इस उच्छिष्ट सुपारीको क्या खाना ? यह तो त्याज्य है। हरली महाराजका निर्णय सुनते ही उन्होंने उस उच्छिष्ट सुपारीको उठाकर झटसे खा लिया। अरे, यह क्या किया ? उन्होंने कहा कि हमारा तो ध्येय है कि जो हरली महाराज कहें उससे उलटा काम करना। आपने इसे त्याज्य बताया मैंने इसे ग्राह्य समझा।

यही बात व्यवहार और निश्चयनयकी है। व्यवहारनय जिसे कहता है निश्चयनय उसका निषेध करता है। व्यवहारनय कहता है कि जीवकी बद्धदशा है, निश्चयनय कहता है कि जीवकी बद्धदशा नहीं है। कहीं आकाशको भी कोई तलवारसे चीर सकता है। जब आत्मा अमूर्तिक है तब मूर्तिक पुद्गल कर्मोंके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साथ उसका बन्ध कैसे हो सकता है ? नित्य अनित्य, एक अनेक, भात अभात आदि बीस विकल्पोंका वर्णन अमृतचन्द्रसूरिने किया है और अन्तमें यह बताया है कि वस्तुस्वरूप इन नयपक्षोंसे परे है। **'उदयति न नयश्रीरस्तमेति प्रमाणं क्वचिदपि न च विद्वो याति निक्षेपचक्रम्।'** एक ऐसी स्थिति आती है जहाँ नयका उदय नहीं रहता, प्रमाण अस्त हो जाता है और निक्षेपचक्रका तो पता ही नहीं चलता कि वह कहाँ गया ?

अच्छा, व्यवहारनय बन्धको स्वीकृत करता है तो उसी नयसे बन्धके स्वरूप, भेद और उसके कारणों पर विचार करना आवश्यक है। दो पदार्थोंके सम्बन्धको बन्ध कहते हैं। यहाँ दो पदार्थोंसे तात्पर्य है आत्मा और कर्मरूप पुद्गलसे। आत्मा और कर्मोंका नीर-क्षीरके समान जो एक क्षेत्रावगाह होता है वही बन्ध कहलाता है। यह बन्ध ही दुःखका कारण है। आत्मा तो अनन्त गुणोंका पुञ्ज एवं जगमगाता हुआ पदार्थ है—ज्ञानसे प्रकाशमान द्रव्य है परन्तु बन्ध दशामें अज्ञानी और दुःखका स्थान हो रहा है।

वह बन्ध भावभावबन्ध, द्रव्यद्रव्यबन्ध, भावद्रव्यबन्ध और द्रव्यभावबन्धकी अपेक्षा चार प्रकारका है। पुरातन रागादिक भावोंके साथ नूतन रागादिकका सम्बन्ध होना भावभावबन्ध है। पुरातन कर्म प्रदेशोंके साथ नवीन कर्मप्रदेशोंका सम्बन्ध होना द्रव्यद्रव्यबन्ध है। रागादिक भावोंके साथ द्रव्यकर्मका जो सम्बन्ध होता है वह भावद्रव्यबन्ध है और द्रव्यकर्मके उदयकालमें रागादिक भावोंके साथ उस द्रव्यकर्मका जो सम्बन्ध है वह द्रव्यभावबन्ध है। द्रव्यबन्ध, भावबन्ध और उभयबन्धकी अपेक्षा बन्धके तीन भेद हैं। प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशबन्धकी अपेक्षा चार भेद हैं। कर्म परमाणुओंका जो स्वभाव है वह प्रकृतिबन्ध है। कर्म परमाणुओंका अपने स्वभावमें कायम रहना स्थितिबन्ध है, उनके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

फलमें जो तारतम्य पड़ता है वह अनुभागबन्ध है और कर्म-परमाणुओंकी जो गणना है वह प्रदेशबन्ध है। नाम, स्थापना, द्रव्य, भव और भावकी अपेक्षा पाँच प्रकारका है। नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी अपेक्षा छह प्रकारका है। नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भावकी अपेक्षा सात प्रकारका है तथा ज्ञानावरणादिकी अपेक्षा आठ प्रकारका है। इस तरह इस बन्धके असंख्यात लोक-प्रमाण तक भेद होते हैं।

इन बन्धोंका कारण क्या है? इस पर भी विचार करना है। बन्धके कारण बताते हुए कुन्दकुन्द स्वामीने मिथ्यात्व, अविरमण, कषाय और योग इन चार कारणोंका वर्णन किया है। उन्होंने कारणके लिये प्रत्यय शब्दका प्रयोग किया है। उमास्वामीने प्रमादको भो सामिल कर पाँच कारण बतलाये हैं। ये मिथ्यात्वादि भाव, गुणस्थानोंमें यथायोग्य बन्धके कारण होते हैं। जैसे मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें सभी कारण हैं। उसके आगे अविरति आदि कारणोंसे बन्ध होता है। छठवें गुणस्थान तक प्रमाद चलता है, दशम गुणस्थान तक कषाय चलतो है और तेरहवें गुणस्थान तक योग चलता है। चौदहवें गुणस्थानमें बन्धका कोई कारण नहीं है अतः वहाँ किसीका भी बंध नहीं होता। **'सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान् पुद्गलानादत्ते स बन्धः'** इस सूत्रमें मुख्यतासे कषायभावको बन्धका कारण कहा है। रेणुबहुल स्थानमें व्यायाम करनेवाले व्यक्तिके शरीरमें जो रेणु--धूलिका सम्बन्ध होता है उसमें जिसप्रकार स्नेहभाव--तेलका लगना कारण है उसीप्रकार कर्मबन्धमें कषायभाव, बन्धका कारण है। यह कषाय ही रागद्वेष कहलाती है। क्रोधादि कषायोंको आप सब जानते हैं, उनकी बुराइयोंको भी समझते हैं। अतः उनके विषयमें क्या कहना? कुन्दकुन्दस्वामीने तो बन्धतत्त्वका निचोड़ इसप्रकार निकाला है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रत्तो बंधदि कम्मं मुंचदि जीवो विरागसंपत्तो।
एसो बंधसमासो तम्हा कम्मेसु मा रज्ज॥

अर्थात् रागी जीव कर्मको बाँधता है और वीतराग जीव कर्मको छोड़ता है यह बन्धका समास—संक्षेप कथन है, इसलिये कर्मोंमें राग मत करो।

जैनधर्ममें अरागको उतना स्थान नहीं जितना वीतरागको है क्योंकि अराग तो जड़ पदार्थ भी है, आकाशादिकमें राग कहाँ है? परन्तु वीतराग दशा चेतनकी ही होती है जिसमें रागभाव पहले थे परन्तु अब बीत गये—दूर हो गये वह वीतराग कहलाता है। जैनधर्म, अनादि शुद्ध परमात्माको स्वीकृत नहीं करता।

आजकल निश्चय और व्यवहारकी चर्चा खूब होती है और व्यवहारको अभूतार्थ भी कहा जाता है, पर उसके बिना दुनियाका काम नहीं चल सकता, यह निश्चित है। खाना, पीना सब व्यवहारसे ही होता है। निश्चयनय, पुद्गलको परमाणुरूप स्वीकृत करता है परन्तु पानी, अनेक परमाणुओंके संयोगसे निर्मित स्कन्ध है। इसकी उत्पत्ति व्यवहारनयसे ही है। यदि व्यवहारनयको छोड़ दोगे तो पानी भी न पी सकोगे। अतः निश्चय और व्यवहारका आलम्बन अपने-अपने पदके अनुरूप करना ही कल्याणकारी है।

ज्ञानपर्व श्रुतपञ्चमी

दिनांक २९ मईके प्रातः काल ८ बजे सरस्वती पूजनके बाद **श्री पं० दयाचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्रीने**, श्रुतावतार कथाका वाचन करते हुए धवल-सिद्धान्तकी रचनाका इतिहास बताया। द्वादशाङ्गके चौंसठ मूलवर्ण तथा उनके संयोगी अक्षरोंका प्रमाण और उनके निकालनेकी विधि बतलाई।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धम्मं सरणं पव्वज्जामि

श्री क्षुल्लक मनोहरलालजी वर्णीने प्रवचन करते हुए कहा— **'धम्मं सरणं पव्वज्जामि'** मैं धर्मकी शरणको प्राप्त होता हूँ। वास्तवमें विचार किया जाय तो एक धर्म ही सब जीवोंके लिये शरण है। अपना शुद्ध स्वभाव ही धर्म कहलाता है। स्वभावमें अशुद्धता मोहोदय जनित है, वह निकल जाय तो स्वभावमें शुद्धता आ जाय और शुद्धता आ जाय तो वही धर्म कहलाने लगे। यह शुद्धता तभी प्राप्त हो सकती है जब यह जीव अपने शुद्ध स्वभावकी ओर लक्ष्य रक्खे। वर्तमानमें जो विकार अनुभवमें आ रहा है उसे समझे कि यह मेरा स्वभाव नहीं है। इस विकारको दूर करना ही मेरा पुरुषार्थ है। यह जीव धर्ममय तो है ही। धर्म कहीं बाहरसे आता है क्या? जब पर-पदार्थोंमें 'मैं' इसप्रकारका भाव करने लगता है तब अधर्ममें फंसता है। कहनेके लिये यह थोड़ा-सा अपराध है परन्तु थोड़ा होनेपर भी अत्यन्त दुःखदायी है। इस जीवको चतुर्गतिके चक्कर यही अपराध लगवाता है। प्रत्येक प्राणीको स्वरूपमें निमग्न होनेका अभ्यास करना चाहिये। जो भी स्वरूपमें निमग्न हो गया वह सब झंझटोंसे पार हो गया।

यमुना नदीमें कछुए बहुत हैं। पानीके अन्दर निमग्न रहते-रहते एक कछुएको कुछ व्यग्रता हुई तो वह अपनी चोंचको बाहर निकालकर पानीकी सतह पर तैरने लगा। उसकी चोंचको देखकर पक्षियोंने उसे चोंटना शुरू किया। पूर्वसे पक्षी आते तो कछुआ अपनी चोंचको पश्चिमकी ओर कर लेता और पश्चिमसे आते तो पूर्वकी ओर कर लेता। इस तरह वह पक्षियोंके चोंटनेसे परेशान हो गया। उस कछुएको यदि कोई यह सलाह दे कि हे भाई। तूँ इस तरह परेशान क्यों होता है? तूं तो पानीमें गोता लगाना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जानता है अतः चोंचको इधर-उधर करनेकी अपेक्षा आठ अंगुल पानीमें निमग्न हो जा, सब पक्षी अपनेआप दूर भाग जावेंगे।

यही बात हमलोगोंकी है। हम अपनी निषयेच्छारूपी चोंचको बाहर निकालकर चल रहे हैं। उस विषयेच्छारूपी चोंचको अनेक प्रतिद्वन्द्वी—विरोधी जीव चोंटते हैं। अर्थात् वे हमारी इच्छाको पूर्ण नहीं होने देते। हम उन प्रतिद्वन्द्वियोंसे अपनी विषयेच्छारूपी चोंचकी रक्षा करनेका प्रयत्न करते हैं परन्तु प्रयत्नमें सफल नहीं हो पाते। इसीलिये रातदिन दुःखका अनुभव करते हैं। यदि हम इस चोंचको दबाकर अपने वीतराग स्वभावमें डुबकी लगा लें तो सब झंझटोंसे पार हो जावें। शत्रु तभी तक हैं जब तक हम परमें उलझे हैं, परकी उलझनको छोड़ दें सब शत्रु अपने आप समाप्त हो जावेंगे।

अपने वीतराग स्वभावका निरन्तर ध्यान रक्खोगे, तो रागद्वेषके कारण उपस्थित होनेपर उनमें उलझोगे नहीं।

सम्यक्त्वम्

रात्रिके आठ बजे पुरुषार्थसिद्ध्युपायके

तत्रादौ सम्यक्त्वं समुपाश्रयणीयमखिलयत्नेन।
तस्मिन्सत्येव यतो भवति ज्ञानं चरित्रं च॥

इस श्लोकका प्रवचन करते हुए श्री समगौरयाजीने कहा कि मोक्षमार्गमें सबसे पहले पूर्ण प्रयत्नके साथ सम्यक्त्व—सम्यग्दर्शनकी उपासना करना चाहिये क्योंकि उसके रहते हुए ही ज्ञान और चारित्र होते हैं अर्थात् सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन होते हैं।

वास्तवमें सम्यग्दर्शनकी अभूतपूर्व महिमा है। जिस सम्यग्दर्शनके होनेपर यह जीव अधिक-से-अधिक अर्धपुद्गल परावर्तन प्रमाण ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संसारमें वास करता है, उसके भीतर नियमसे मोक्ष प्राप्त कर लेता है। वह सम्यग्दर्शन सच्चे देवकी शरण प्राप्त करनेसे होता है। जीवाजीवादि तत्त्वोंका श्रद्धान करनेसे भी सम्यग्दर्शनहोता है पर उन तत्त्वोंकी ओर श्रद्धाका भाव उसी प्राणीके होता है जो सच्चे देवकी शरणको प्राप्त कर लेता है। वीतराग जिनेन्द्रदेव ही सच्चे देव हैं। पूर्ण मनोयोगसे उनकी शरण प्राप्त कर लेनेसे इस जीवके सब मनोरथ सिद्ध होते हैं। इस संदर्भमें आपने स्वरचित्त 'भक्ति-प्रवाह'के अनेक पद्य सुनाये। भक्ति-विभोर होते हुए आपने कहा—

सम्यग्दृष्टि जीव दूसरोंके दोष देखनेकी अपेक्षा हमेशा अपने ही दोषोंको देखता है। उसके अन्तरङ्गके नेत्र खुल जाते हैं। चमड़ेके नेत्रोंसे दूसरोंके दोष दिखते हैं, पर अन्तरङ्गके नेत्रसे अपने दोष दिखते हैं। एक सम्यग्दृष्टि भगवज्जिनेन्द्रसे अपने दोषोंकी आलोचना करता हुआ कहता है—

परापवादेन मुखं सदोषं नेत्रे परस्त्रीजनवीक्षणेन।
चेतः परापायविचिन्तनेन ब्रुवे कियद् हास्यकरं मुनीश॥

हे मुनीन्द्र! मेरा मुख दूसरोंके दोष कहनेसे सदोष है, मेरे नेत्र परस्त्रीके अवलोकनसे सदोष है और मेरा चित्त, दूसरेका अनिष्ट चिन्तन करनेसे सदोष है। कितना कहूँ? मेरे सभी कार्य मेरी हँसी करानेवाले हैं।

वैराग्यरङ्गः परवञ्चनाय धर्मोपदेशो जनरञ्जनाय।
वादाय विद्याध्ययनं च मेऽभूत् कियद् ब्रुवे हास्यकरं मुनीश॥

हे मुनीन्द्र! मैंने वैराग्य धारण किया, भगवे वस्त्र पहने तो दूसरोंको ठगनेके लिये, मैंने धर्मोपदेश दिया सो मनुष्योंको प्रसन्न करनेके लिये और मैंने विद्याध्ययन किया सो वादविवाद करनेके लिये। कितना क्या कहूँ? मेरी सभी चेष्टाएँ हास्य करानेवाली रहीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विवेकी मानव सदा आत्मनिरीक्षण करता है। वह दूसरोंके सुधारकी अपेक्षा अपना सुधार पहले करता है। आपने भर्तृहरिका नाम श्रवण किया है। बहुत बड़े विद्वान् हुए हैं। उनके शृङ्गार-शतक, नीतिशतक और वैराग्यशतक संस्कृत-साहित्यमें अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। उनके विरक्त होनेकी एक अनोखी घटना है। वे राजा थे, लोकमें अच्छा सन्मान उनका था। एक बार एक साधुने उन्हें अमर फल दिया तथा कहा कि इस फलको खानेवाला अमर हो जाता है। भर्तृहरि उस फलको पाकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने सोचा कि हमारी रानी यदि अमर हो जायगी तो हमारे भोगो-पभोगमें सदा आनन्द आता रहेगा, इसलिये उन्होंने वह फल रानीको दे दिया। रानीका स्नेह मंत्रीसे था, इसलिये उसने वह मंत्रीको दे दिया। मंत्रीका स्नेह एक वेश्यासे था, इसलिये वह फल वेश्याको दे दिया और वेश्याका स्नेह राजासे था, इसलिये उसने वह फल राजाको दे दिया। राजा भर्तृहरि उस फलको देखकर विचारमें पड़ गये कि यह फल तो मैंने रानीको दिया था। फिर इस वेश्याके पास कहाँसे आ गया। राजाने आगबूबूला होकर जाँच की। वेश्याने कहा—मुझे यह फल मंत्रीसे प्राप्त हुआ है, मंत्रीने कहा—रानीसे प्राप्त हुआ है और रानीने कहा कि महाराज !—मारो, चाहे बचाओ, मेरा आन्तरिक स्नेह मंत्रीसे है, इसलिये मैंने उसे दिया था। रानीका उत्तर सुनते ही उनका क्रोध शान्त हो गया। उनके अन्तरङ्गके नेत्र खुल गये। अन्दरसे आवाज आने लगी—

यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता
साप्यन्यमिच्छति जनः स जनोऽन्यसक्तः।
अस्मत्कृते च परितुष्यति काचिदन्या
धिक् तां च तं च मदनं च इमां च मां च॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मैं जिसका निरन्तर चिन्तन करता हूँ वह रानी मुझमें विरक्त है, वह अन्य—मंत्रीको चाहती है, मन्त्री भी अन्य—वेश्यामें आसक्त है, और अन्य—वेश्या मुझसे संन्तुष्ट है—मुझे चाहती है। इसलिये उस रानीको धिक्कार हो, उस मंत्रीको धिक्कार हो, उस कामको धिक्कार हो, उस वेश्याको धिक्कार हो और सभी दोषोंकी जड़स्वरूपर मुझे धिक्कार हो। इस घटनासे राजा भर्तृहरि संसार-से विरक्त हो कर एक साधुके रूपमें सामने आये।

संवर तत्त्व

प्रवचनके बाद **श्री पं० माणिकचन्द्रजीने संवर तत्त्व** पर निम्न प्रकार व्याख्यान किया—

आज संवर तत्त्वका विचार करना है। उमास्वामीने संवरका स्वरूप तत्वार्थसूत्रके नवमाध्यायमें इस प्रकार लिखा है **'आस्रव निरोधः संवरः'** अर्थात् आस्रवका रुक जाना संवर है—आस्रव क्या है, इसके लिये लिखा है- **'कायवाङ्मनःकर्म योगः'** और **'स आस्रवः'** अर्थात् कायवर्गणा, वचनवर्गणा और मनोवर्गणाके निमित्त-से आत्माके प्रदेशोंमें जो परिस्पन्द होता है वह योग कहलाता है—और वह योग ही आस्रव कहलाता है। यद्यपि योग आस्रवमें कारण है, स्वयं आस्रव नहीं है क्योंकि आस्रव तो कर्मागमनको कहते हैं, तथापि यहाँ कारणमें कार्यका उपचार कर **'अन्नं वै प्राणाः'** के समान आस्रवके कारण योगको ही आस्रव कह दिया है। आस्रव-बन्धकी प्रक्रियामें योग भी कषायके समान भयंकर होता है, क्योंकि योग, कर्मोंका आस्रव करानेके साथ-साथ उनका प्रकृति बन्ध और प्रदेशबन्ध भी करता है अर्थात् कार्मणवर्गणाके परमा-णुओंमें कर्मत्व शक्ति कायम करता है तथा समयप्रबद्धके परमा-णुओंको आठों कर्मोंमें विभाजित करता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ये आस्रव और संवर करणानुयोगसे संबन्ध रखते हैं अतः उसी अनुयोगकी अपेक्षा विचार करना ठीक होगा। नेमिचन्द्राचार्य ने गोम्मटसार कर्मकाण्डमें मिथ्यात्वादि गुणस्थानोंमें—

सोलस पण बीस णभं दसचउ छक्केक्क बंधवोच्छिण्णा।
दुगतीसचदुरपुव्वे पण सोलस जोगिणो एक्को॥

इस गाथा द्वारा बन्धव्युच्छित्तिकी प्रकृतियाँ गिनाई हैं। मिथ्यात्वके आश्रयसे बँधनेवाली मिथ्यात्व, हुँडकसंस्थान आदि सोलह प्रकृतियोंका बन्ध पहले गुणस्थान तक ही होता है, उसके आगे उनका संवर हो जाता है। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धीके आश्रयसे बँधने वाली पच्चीस प्रकृतियोंका बन्ध दूसरे गुणस्थान तक ही होता है, तीसरे आदि-गुणस्थानोंमें उनका संवर हो जाता है। तीसरे गुणस्थानमें किसी प्रकृतिकी बन्धव्युच्छित्ति नहीं होती। अप्रत्याख्यावरणके आश्रयसे बँधने वाली दश प्रकृतियाँ चतुर्थ गुणस्थान तक ही बँधती हैं, आगे उनका संवर हो जाता है। प्रत्याख्यानावरणके आश्रयसे बँधने वाली चार प्रकृतियाँ पञ्चम गुणस्थान तक ही बँधती हैं, आगे उनका संवर हो जाता है। प्रमादके आश्रयसे बँधने वालीं छह प्रकृतियाँ छठवें गुणस्थान तक ही बँधती हैं सप्तमादि गुणस्थानोंमें उनका संवर हो जाता है। संज्वलनके तीव्रोदयके आश्रयसे बँधने वाली देवायुका आस्रव सप्तम गुणस्थान तक ही होता है। आगे उसका संवर हो जाता है। संज्वलनके मध्यमोदयके आश्रयसे बँधने वाली छत्तीस प्रकृतियोंका आस्रव अप्रमत्त गुणस्थान तक ही होता है, आगे नवमादि गुणस्थानोंमें उनका संवर हो जाता है। संज्वलनके मन्दोदयमें बँधने वाली पाँच प्रकृतियोंका आस्रव नवम गुणस्थान तक ही होता है, दशमादि गुणस्थानोंमें उनका संवर हो जाता है। संज्वलनके मन्दतर उदयमें बँधने वाली सोलह प्रकृतियोंका आस्रव दशम गुणस्थान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तक ही होता है, आगे एकादशादि गुणस्थानोंमें उनका संवर हो जाता है। योगके निमित्तसे बँधनेवाली सातावेदनीय प्रकृतिका आस्रव तेरहवें गुणस्थान तक ही होता है, आगे उसका संवर हो जाता है। चौदहवें गुणस्थानमें पूर्ण संवर हो जाता है। यही संवर वास्तविक संवर है। इस संवरके होने पर ही निर्जरा कार्यकारी होती है।

संवरके कारणोंका विचार करते हुए उमास्वामी महाराजने गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय और चारित्रका उल्लेख किया है। तपके द्वारा संवर और निर्जरा दोनों होते हैं। इसके लिये सूत्र है **'तपसा निर्जरा च'**। गुप्ति आदिके स्वरूपको आप सब अच्छी तरह जानते हैं।

स्वाध्यायः परमं तपः

श्रुतपञ्चमी पर्व पर व्याख्यान करते हुए **'पं० पन्नालालजी'** ने कहा कि आज श्रुतपञ्चमीके पर्व पर हम सबको स्वाध्यायका नियम करना चाहिये। जिनवाणीकी सच्ची भक्ति स्वाध्यायसे ही होती है। जिस प्रकार सूत्रसहित सुई गुमती नहीं है उसी प्रकार सूत्रसहित—शास्त्रज्ञान सहित जीव गुमता नहीं है। अन्यथा चौरासी लाख योनियोंके बीच कौन जीव कहाँ पड़ा है इसका पता भी नहीं चलता। **'स्वाध्यायः परमं तपः'** स्वाध्यायको आचार्योंने परम तप कहा है। परम इसलिये कहा है कि स्वाध्यायके कालमें मनकी स्थिरता नियमसे होती है। सामायिक आदिके कालमें मनकी स्थिरताकी गारंटी नहीं है। पर स्वाध्यायके कालमें उसकी गारंटी है! मनकी स्थिरताके बिना स्वाध्याय संभव ही नहीं है। वाचना, प्रच्छना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय और धर्मोपदेश ये पाँच स्वाध्यायके अंग हैं। सभी अंग अपना-अपना महत्त्व रखते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस प्रकरणमें एक बात आपसे और कहनी है। वह यह कि पुस्तकोंका स्वाध्याय, पुस्तकें स्वयं खरीदकर कीजिये। विवाह आदिके अवसरों पर पुस्तकोंका उपहार दीजिये। ऐसा करनेसे पुस्तकोंका प्रचार बढ़ेगा, प्रकाशक संस्थाएँ नये नये प्रकाशनोंके लिये तैयार होंगी। आज भी हमारा बहुत-सा साहित्य अप्रकाशित पड़ा है। यदि हम मन्दिरोंमें चूना, ईंट या संगमर्मर न लगवा कर उस द्रव्यसे जिनवाणीको प्रकाशित करा दें तो यह जैनधर्मकी प्रभावनाका एक बड़ा कार्य होगा। धार्मिक क्षेत्रमें पचास वर्षपूर्व जो संघर्ष था वह आज प्रायः समाप्त हो गया है। आज एक दूसरेके धर्मकी बातको सब लोग बड़े प्रेमसे सुनते हैं, अध्ययन करते हैं। जैनेतर समाजमें जैनधर्मके ऐसे अच्छे ज्ञाता हैं, जो जैन विद्वानोंकी अपेक्षा जैनधर्म पर अच्छा प्रकाश डालते हैं। अतः इस वातावरण-का लाभ उठाकर हमें अपना साहित्य संसार भरमें फैलानेका प्रयत्न करना चाहिये। मुझे दुःख होता है यह जानकर कि अच्छे-अच्छे लखपतियोंके घर दश-बीस रुपयेके भी जैनशास्त्र नहीं निकलते। उनकी बहू-बेटियाँ इधर उधरसे माँगकर जैनशास्त्र पढ़ती हैं। अतः शास्त्र खरीदनेकी ओर रुचि बढ़ाना चाहिये। धनतेरसके दिन जैसे वर्तन खरीदनेकी रुचि आपको है उसी तरह श्रुतपंचमीके दिन शास्त्र खरीदनेकी रुचि होना चाहिये। मोक्षमार्गप्रकाशक मोक्ष-शास्त्र, पद्मपुराण और सदासुख दासकी टीका वाला रत्नकरण्ड श्रावकाचार तो प्रत्येक घरमें होना चाहिये। ये चारों ग्रन्थ इतने सरल हैं कि प्रत्येक व्यक्ति अनायास इनका स्वाध्याय कर सकता है। हमारा युवकवर्ग ऐसे उपन्यास तथा कहानी आदिके ग्रंथोंको पढ़ता है जिनकी न जड़ है और न पत्ता, परन्तु जिन शास्त्रोंसे आत्म-कल्याण होता है उनके पढ़नेकी ओर उनकी रुचि नहीं है। इस ओर रुचि बढ़ना चाहिये। छोटे-छोटे बच्चों-बच्चियोंमें धार्मिक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्रंथोंके स्वाध्यायकी ओर रुचि बढ़े, इसके लिये प्रयत्न होना चाहिये। सागरके प्रत्येक मुहल्लोंमें रात्रिपाठशालाएँ चालू हैं। उनमें अपने बालक-बालिकाओंको भेजिये। श्रुतसप्ताहका आयोजन खासकर इसी उद्देश्यसे हमने किया है कि हमारी भावी पीढ़ी इस ओर अपनी रुचि बढ़ावे। छहढालाकी कक्षामें १०५ और द्रव्यसंग्रहकी कक्षामें ६५ छात्र-छात्राएँ एक साथ बैठकर जब अध्ययन करती हैं तब वह दृश्य देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है। बच्चोंका यह उत्साह दिन-प्रति बढ़ता रहे। ऐसा प्रयत्न हम सबको करना चाहिये।

नमस्कारमन्त्रके विविध पाठ

दिनांक ३० मईको प्रातःकाल धवल-सिद्धान्तका प्रवचन करते हुए **श्री पं० वंशीधरजी इन्दौरने** कहा कि मंगल दो प्रकारके होते हैं—एक निबद्ध मंगल और दूसरा अनिबद्ध मंगल। जिसमें दूसरेके द्वारा निबद्ध मंगलाचरण किया जाता हैं उसे निबद्ध मंगल कहते हैं। इस ग्रंथमें जो णमोकारमन्त्र मंगलाचरणके रूपमें अंकित है वह पूर्वाचार्योंके द्वारा कृत होनेसे निबद्ध है। यह महामन्त्र सर्व-श्रेष्ठ मन्त्र है, सर्व संकटोंसे पार करनेवाला है। इसमें आत्माकी पाँच अवस्थाओंका वर्णन हैं। सिद्ध अवस्था सर्वोपरि है क्योंकि वह सर्वकर्मसे विप्रमुक्त होनेके कारण संसारातीत है। वास्तवमें यह सिद्ध अवस्था ही कार्यसमयसार है। उसके पूर्वकी अवस्था—अरहंत अवस्था है, जिसमें चार घातिया कर्मोंका, तेरह नामकर्मकी प्रकृतियोंका और मनुष्यायुके सिवाय तीन आयुओंका, इसतरह त्रेशठ प्रकृतियाँका अभाव हो जाता है। इसे कारणसमयसार कहते हैं। अरहंतके द्वारा जगत्के समस्त जीवोंका कल्याण होता है। मोक्षमार्गकी प्रवृत्ति उन्हींकी दिव्यध्वनिके आधारपर होती है।

णमो अरहंताणं, णमो अरिहंताणं और **णमो अरुहंताणं** इस-प्रकार तीन पाठ, प्रथम पदके मिलते हैं जो सातिशय पूज्यताको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राप्त हुए हैं वे अरहंत कहलाते हैं। अरहंतका संस्कृतरूप अर्हत् होता है जो कि अर्ह धातुसे बनता है। आठ कर्मोंमें मोहनीय कर्म अरि नामसे प्रसिद्ध है, रजका अर्थ ज्ञानावरण और दर्शनावरण है तथा रहसका अर्थ अन्तराय कर्म है। इन चार कर्मोंका जिन्होंने नाश कर दिया है वे अरिहंत कहलाते हैं। यह शब्द अरि उपपदपूर्वक हन् धातुसे निष्पन्न होता है। जो अब आगे जन्म धारण नहीं करेंगे वे अरुहन्त कहलाते हैं। मृत्यु और निर्वाणमें यही तो अन्तर है। मृत्यु उसे कहते हैं जिसके बाद पुनः जन्म धारण करना पड़े और निर्वाण उसे कहते हैं जिसके बाद पुनः जन्म धारण न करना पड़े। जो अरुहन्त बन जाते हैं वे नियमसे निर्वाण ही प्राप्त करते हैं।

णमोकार मन्त्रमें सवर्ण वर्णोंकी अपेक्षा विचार करनेपर सभी व्यञ्जनों और सभी स्वरोंका समावेश होता है। ओम्, असि आ उ सा, ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः आदि बीजाक्षर इसी मन्त्रसे सम्बन्ध रखनेवाले हैं। लोकमें प्रचलित अनेक अंकात्मक यन्त्र इसी मन्त्रसे निकले हुए हैं। जैसे लोकमें एक इक्कीसा यन्त्र प्रचलित है जो कि सर्वसिद्धिदायक माना जाता है। उसकी उत्पत्ति इसी महामन्त्रसे हुई है।

५
७ ७ ७
९

इनमें पांचका अंक 'णमो सिद्धाणं' इन पांच अक्षरोंका वाचक है, ७के तीन अंक 'णमो आयरियाणं', 'णमो अरहंताणं' और 'णमो उवज्झायाणं'के वाचक हैं। तथा नौका अंक 'णमो लोए सव्व-साहूणं'का वाचक है। ॐ यह बीजाक्षर पांचो परमेष्ठियोंका वाचक है। अरहंतका अ, अशरीर—सिद्धका अ, आचार्यका आ इन तीनोंमें सवर्ण दीर्घ होनेपर एक आ रहा, उसका उपाध्यायकी उ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के साथ गुण होनेपर ओ बनता है तथा उसके साथ मुनिका म् लगा देनेसे 'ओम्' शब्द सिद्ध होता है। भगवान्‌की दिव्यध्वनि ॐकाररूप ही खिरती हैं। अन्य लोगोंमें भी वेदका प्रारम्भ ॐकारसे ही मानते हैं। ॐ वेदका प्रथमाक्षर है। ॐका जो रूप है उसमें भी एक रहस्य छिपा हुआ है। ॐमें जो ३का अंक लिखा हुआ है वह पदार्थमें रहनेवाले अस्तित्व, नास्तित्व और अवक्तव्य इन तीन धर्मोंका वाचक है। ये तीन धर्म व्यहारनयसे है। निश्चयनय वस्तुमें भेदको स्वीकृत नहीं करता, इसलिये ३-० उस तीनके अंकसे सम्वन्ध रखनेवाले शून्यका उल्लेख करते हुए सूचित किया है कि निश्चयदृष्टि इन तीन भेदोंको स्वीकृत नहीं करती। ३-०के ऊपर, ३का अंक तथा शून्य सहित आड़ी रेखाका स्पर्श करती हुई जो चन्द्राकारकी कला बनाई जाती है वह व्यवहार और निश्चय इन दोनों दृष्टियोंका स्पर्श करनेवाली प्रमाणदृष्टिका संकेत है। और उस अर्धचन्द्रके ऊपर ॐ जो शून्य रखा जाता है वह समयसारका वाचक है क्योंकि शून्य सर्वविकल्पोंके अभावको सूचित करता है।

इन धवलादि ग्रंथोंका स्वाध्याय करो तो इनमें संकलित प्रमेयका पता आपको चले। धवलादि ग्रंथोंकी उत्पत्तिका इतिहास कल आपने सुना था। एक समय था जब इनके दर्शन मात्रके लिये सेठ माणिकचन्द्रजी बम्बईने पाँचसौ रुपये चढ़ाये थे। पर आज विद्वानोंकी कृपासे उनका हिन्दी अर्थ सहित प्रकाशन हो चुका है। अब तो इनके स्वाध्यायमें अरुचि नहीं होना चाहिये। इन ग्रंथोंका प्रकाशन हो गया, यह इस युगका बहुत बड़ा काम माना जायगा।

अध्यवसान

श्री मनोहरलाजी वर्णीने अध्यवसान भावोंकी चर्चा करते हुए कहा कि ये अध्यवसान भाव ही बन्धके कारण हैं। पर वस्तुको जो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बन्धका कारण कहा जाता है वह उपचारसे कहा जाता है। पर-वस्तुके संनिधानसे अध्यवसान भाव उत्पन्न होते हैं और उनसे बन्ध होता है। मिथ्यात्व, अविरमण तथा कषायरूप जो आत्माके भाव हैं वे ही अध्यवसान कहलाते हैं। ये अध्यवसान क्रियमाण, विपच्यमान और ज्ञायमानकी अपेक्षा तीन प्रकारके हैं। मिथ्यादृष्टि अवस्थामें जो बुद्धिपूर्वक रागादिक भाव किये जाते हैं तथा जिनकी संतति उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है वे क्रियमाण अध्यवसान कहलाते हैं। सम्यग्दृष्टि जीवके पूर्वबद्ध कर्मका उदय आनेसे जो रागभाव उत्पन्न होते हैं परन्तु मिथ्यात्वका अभाव हो जानेसे जिनकी सन्तति आगे नहीं बढ़ती, इन्धन रहित जमीन पर पड़ा हुआ अग्निका तिलगा जिस प्रकार थोड़ी देर जलकर स्वतः शान्त हो जाता है इसी प्रकार जो कुछ कालमें स्वतः शान्त हो जाता है वह विपच्यमान अध्यवसान है। और जब ज्ञानी जीव श्रेणीकी उस भूमिकामें पहुँच जाता है जहाँ रागादिक सिर्फ ज्ञानमें तो आते हैं परन्तु उन रूप परिणति नहीं होती। उनका इतना मन्द उदय रह जाता है कि वे ज्ञानी जीवको स्वरूपसे विचलित करनेमें समर्थ नहीं हो पाते, वे ज्ञायमान अध्यवसान भाव हैं।

इन अध्यवसान भावोंको नष्ट करनेका पुरुषार्थ ही सबसे बड़ा पुरुषार्थ है। यह पुरुषार्थ तबतक सफल नहीं हो सकता जबतक भूतार्थसरणीका आश्रय न लिया जावे—पदार्थके वास्तविक स्वरूप-को बतलाने वाली निश्चय दृष्टिका आश्रय न लिया जाय।

मुनियोंकी अलौकिक वृत्ति

रात्रिके आठ बजेसे पुरुषार्थसिद्ध्युपायके

अनुसरतां पदमेतत्करांबिताचारनित्यनिरभिमुखा।
एकान्तविरतिरूपा भवति मुनीनामलौकिकी वृत्तिः॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्लोक पर प्रवचन करते हुए **पं० दयाचन्द्रजी साहित्याचार्यने** कहा कि इस संसार-सागरसे पार होनेके लिये मुनियोंकी वृत्ति धारण करना अत्यन्त आवश्यक है। मुनियों की यह वृत्ति समस्त पापाचारोंसे पराङ्मुख रहती है। जिन्हें यह वृत्ति प्राप्त हो गई वे नियमसे मोक्षगामी होते हैं। आगममें लिखा है कि भावलिङ्ग मुनिपद अधिक-से-अधिक बत्तीस बार धारण करना पड़ता है इसके भीतर ही यह जीव मोक्षको प्राप्त कर लेता है। परन्तु द्रव्यलिंगी मुनियोंके पदकी कोई संख्या आगममें नहीं बताई गई है। उनके लिये तो लिखा है कि यह जीव अनन्तबार मुनिपद धारण कर नौवें ग्रैवेयक तक उत्पन्न होता है। परन्तु संसार पार नहीं हो पाता। प्रत्येक मानवको इसका लक्ष्य रखना चाहिये कि हमारे जीवनमें वह अवसर कब आवे, जब मैं भावलिंगी मुनि बन कर संसार-सागरसे पार होनेका प्रयत्न करूँगा। द्रव्यलिंगी और भावलिंगीकी पहिचान करना साधारण मनुष्योंकी शक्तिके बाहर है क्योंकि द्रव्यलिंगी मुनि भी चरणानुयोगके अनुसार अट्ठाईस मूलगुणोंका निर्दोष पालन करता है, यही नहीं शुक्ललेश्याका धारक भी हो सकता है, तभी तो नौवें ग्रैवेयकके ३१ सागरकी आयुका बंध करता है। चरणानुयोगका अपलाप करनेवाले पाखण्डी मुनि, द्रव्यलिङ्गी मुनि नहीं कहलाते, और न वे देवायुका ही बन्ध करते हैं ऐसे जीव तो सीधे निगोदके पात्र होते हैं।

अमृतचन्द्र स्वामीने लिखा है कि वक्ताको चाहिये कि वह शिष्यके लिये सर्व प्रथम मुनिधर्मका ही उपदेश देवे। पश्चात् जब वह मुनिधर्म धारण करनेमें असमर्थता बतलावे तब गृहस्थधर्मका उपदेश देवे। जो वक्ता मुनिधर्मका उपदेश न देकर पहलेसे ही गृहस्थधर्मका उपदेश देता है उसे जिनागममें निग्रह—दण्डका पात्र बताया गया है। उसका कारण यह है कि जो शिष्य मुनिधर्मका उपदेश सुनकर मुनि बन सकता था वह पहले ही गृहस्थधर्मका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपदेश सुनकर उसीमें संतुष्ट रह जाता है, आगे नहीं बढ़ पाता। इस तरह वह दुर्बुद्धि वक्ताके द्वारा ठगा जाता है।

निर्जरा तत्त्व

निर्जरा तत्त्वपर प्रकाश डालते हुए श्री पं० वंशीधरजी व्याकरणाचार्य बीनाने कहा—

आज निर्जरा तत्त्वकी चर्चा करना है। श्रुतसप्ताहके सात दिन हैं और तत्त्व भी सात हैं। अतः एक दिन एक तत्त्वका विशिष्ट व्याख्यान करना यह अच्छी योजना है। जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्त्व हैं। इनमें सर्वोपरि तत्त्व जीव ही है। इसका एक कारण है वह यह कि जड़ पदार्थोंमें किसी वातावरणका संवेदन नहीं होता। जीवके सिवाय समस्त द्रव्य जड़पदार्थ है। उनमें सुख-दुःख आदिका संवेदन नहीं होता। वह जीवमें ही होता है, अपने इस संवेदन गुणके कारण ही जीव सब पदार्थोंमें श्रेष्ठ तत्त्व माना जाता है।

जीव यद्यपि दिखाई नहीं देता है तथापि 'मैं' के द्वारा उसका बोध सबको होता है। मैं जानता हूँ, मैं खाता हूँ, मैं चलता हूँ, मैं सुखी-दुखी हूँ, इस प्रकार यह 'मैं' ही जीव है, आत्मा है। यह अनादिकालसे कर्मोंसे बद्ध चला आ रहा है। बद्धदशा संसारी दशा है तथा उस संसारी दशाके कारण आस्रव और बन्ध तत्त्व हैं। अबद्धदशा मुक्तदशा है, इसके कारण संवर और निर्जरा तत्त्व है।

वैसे तो प्रत्येक समय प्रत्येक जीवके सिद्धोंके अनन्तवें भाग और अभव्यराशिसे अनन्तगुणित कर्मपरमाणु बँधते हैं और निर्जीर्ण होते हैं पर ऐसी निर्जीर्ण दशासे जीवका कल्याण नहीं होता। बन्ध और निर्जराकी ऐसी दशा तो अनादिकालसे चली आ रही है।

निर्जराके दो भेद हैं—सविपाक निर्जरा और अविपाक निर्जरा। कर्म, अपना फल देकर क्रमसे खिरते जाते हैं यह सविपाक निर्जरा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है और तपश्चरणादिके द्वारा, विपाकसे पूर्व ही जो कर्म खिरा दिये जाते हैं वह अविपाक निर्जरा है। यह अविपाक निर्जरा ही शिवसुखको प्राप्त कराने वाली है। अविपाक निर्जरा संवरपूर्वक होती है। आगममें गुणश्रेणी निर्जराका प्रारम्भ सम्यग्दृष्टिसे ही बताया है। बन्धके कारणमें सबसे पहला कारण मिथ्यादर्शन बतलाया गया है अतः संवरके कारणोंमें प्रथम कारण मिथ्यात्वका अभाव होना चाहिए। द्वितीय गुणस्थानमें पहुँचते ही मिथ्यात्वसे बँधनेवाली सोलह प्रकृतियोंका संवर हो जाता है और तृतीय गुण-स्थानमें पहुँचनेपर अनन्तानुबन्धिके निमित्तसे बँधनेवाली पच्चीस प्रकृतियोंका संवर हो जाता है।

जब सम्यग्दर्शनके साथ चारित्र और तपका संसर्ग होता है तब निर्जराकी मात्रा अत्यधिक हो जाती है। गुणश्रेणी निर्जराके सम्य-ग्दृष्टि, श्रावक आदि जो १० स्थान बतलाये हैं उनमें उत्तरोत्तर निर्जराका प्रमाण असंख्यातगुणा होता जाता है। सम्यग्दर्शनकी बड़ी महिमा है। उसके होनेपर तो निर्जराका प्रारम्भ हो ही जाता है परन्तु सम्यग्दर्शनके सन्मुख सातिशय मिथ्यादृष्टिके भी बहुत निर्जरा होती है। तात्पर्य यह है कि विकारीभावोंको समझकर उन्हें दूर करनेका पुरुषार्थ होना चाहिये।

प्रजातन्त्रके युगमें समाज-व्यवस्था

व्याख्यानमालाके अन्तर्गत उक्त विषय पर बोलते हुए **पं० दयाचन्द्रजी साहित्याचार्यने** कहा—

मनुष्य सामाजिक प्राणी है, समाजके बिना उसका निर्वाह नहीं हो सकता। व्यक्तियोंका समूह समाज कहलाता है। यदि एक-एक व्यक्ति अपना सुधार करले तो समाजका सुधार अनायास हो सकता है। आजके प्रजातन्त्र युगमें समाजकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। **'कलौ संघे शक्तिः'**के अनुसार हमें संघकी आवश्यकता है। हमारी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बिखरी हुई शक्ति हमें दुनियाँमें नगण्य सिद्ध करती है। हमारे बीच-में ऐसे अनेक कार्य चल पड़े हैं जिनसे परस्परमें मतभेद बढ़ा है और हम संगठित दशासे असंगठित दशामें आ गये हैं। कोई किसी-की परवाह नहीं रखता। बड़ा आदमी कहता है कि हमें किसीकी क्या आवश्यकता ? हम अपने पैसेके बलपर अकेले ही निर्वाह कर सकते हैं और जिनके पास पैसा नहीं है उनके मुखसे मिकलता है कि आप पैसे वाले हैं तो अपने घरके हैं, हमारा आप क्या कर सकते हैं ? इस प्रकार सधन और निर्धन दोनों वर्गके लोग एक दूसरेकी उपेक्षा करने लगे हैं। पर ऐसी उपेक्षासे क्या समाज जीवित रह सकेगी ? परस्परका सहयोग, परस्परका वात्सल्य भाव-ही हमें एक सूत्रमें बांध कर रख सकता है। देखा जाता है कि एक गांवमें यदि दश घर जैनियोंके हैं तो उनमें पाँच पटी हैं। दश घरके लोग भी एक पटीमें नहीं रह सकते। किसीकी लड़कीका सम्बन्ध कहीं चलता है तो दूसरी पटीका कोई आदमी झूठा गुम-नाम पत्र लिखकर वातावरण गंदा कर देता है। किसी कन्याके विषयमें झूठा प्रचार करना जीव-हिंसासे कम पापका नहीं है।

आज दहेजका दानव सुलसाके समान मुँहको फैलाता हुआ समाजके भीतर आ घुसा है। पच्चीस-पच्चीस वर्षकी कुँवारी लड़-कियाँ घरोंमें बैठी हैं, पर मन चाहे दहेजकी व्यवस्था न हो सकनेसे उन्हें कोई पूछता भी नहीं है। जब कि वे सुन्दर हैं ओर सुशिक्षित भी। यदि ऐसी लड़कियाँ क्रान्ति कर दें तो समाजकी क्या दशा होगी ? कन्या पक्षको सताकर पैसा प्राप्त करना और उससे अपनी शान-शौकत बताना लज्जाको बात है। इस ओर समाजको अविलम्ब ध्यान देनेकी आवश्यकता है। जो युवकवर्ग, देशमें समाजवाद और अपरिग्रहवादके समर्थक हैं, इनके समर्थनके लिये लम्बी-लम्बी बातें करते हैं वे चुप क्यों हैं ? उन्हें आगे आकर अपने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लोभी परिवारको समझाना चाहिये। हमारा युवकवर्ग इतना अकर्मण्य क्यों होता जा रहा है जिससे उसे स्त्रीधनकी आवश्यकता महसूस होने लगी है।

श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों सम्प्रदाय एक हों, यह दूरकी बात है। पर हम दिगम्बर भी अपनी-अपनी उपजातियोंके पक्ष-व्यामोहमें मस्त हैं, एक दूसरेको काट करनेमें लगे रहते हैं। यदि हम समाजको सुरक्षित रख सके तो संस्थाओं, मन्दिरों और तीर्थ-स्थानोंको सुरक्षित रख सकेंगे। एक व्यक्तिमें इन सबकी रक्षा करने की सामर्थ्य नहीं है। संस्थाएँ, समाजके उत्कर्षके लिये अत्यन्त आवश्यक हैं। यदि इस वणिक् समाजमें आज कुछ जागृति आई है तो इन संस्थाओंके माध्यमसे ही आई है। पूर्वजोंके द्वारा संस्थापित इन संस्थारूप वृक्षोंको यदि हम हराभरा न रख सके तो पश्चा-त्तापकी तपनमें झुलसे बिना न रहेंगे।

आज हमें साहित्यकी भी बड़ी आवश्यकता है। **'जहाँ नहीं साहित्य वहाँ आदित्य नहीं है'**—जहां साहित्य नहीं है वहाँ अंधेरा ही अंधेरा है। जिन समाजोंमें कोई दार्शनिक, कोई सुदृढ़ मान्यताएँ और सिद्धान्त नहीं है वे भी अपना थोथा साहित्य प्रकाशित कर दुनियाँमें अपना स्थान बना चुकी हैं, पर जिस जैनधर्मका दार्शनिक तत्त्व अजेय है, आचारपक्ष प्रशस्त है तथा विश्वकल्याणकी भावना जिसमें प्रकट की गई है उसका, विदेशोंकी बात जाने दो, देशमें भी पूरा प्रचार नहीं है। हम मन्दिरोंका निर्माण तो करते हैं, प्रति वर्ष सैकड़ों प्रतिमाओंकी प्रतिष्ठा कराते हैं पर भगवान्के सिद्धान्तोंके प्रसारकी ओर हमारा लक्ष्य नहीं जाता। यह एक ऐसा स्वर्णयुग है जिसमें लोगोंका धर्मसम्बन्धी संघर्ष कम हुआ है। एक जमाना तो वह था जब एक धर्मवाले दूसरे धर्मवालेकी बात सुननेके लिये तैयार नहीं थे। पर आज जनतामें इतनी उदारता आई है कि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वह एक दूसरेके धर्मकी बातको बड़ी श्रद्धा और प्रेमके साथ सुनने को तैयार है। खेतकी भूमि इस समय प्रशस्त है उसमें बीज डालने की आवश्यकता है। यदि समयपर हम अच्छा बीज डाल सके तो उसका फल हम भोगेंगे और हमारी संतान भोगेगी।

आजकल समाजमें एकाङ्गी विचारधाराका प्रचार होता जा रहा है जो समाजकी उन्नति तथा संगठनमें बाधक है। कोई पुण्य-को सर्वथा हेय समझ बैठे हैं जिसके कारण वे संस्थाओंको दान देना, परोपकार करना, पूजा करना सहयोग देना आदि आवश्यक कर्त्तव्योंको छोड़ते जाते हैं। इससे समाजके संगठनमें बाधा आने लगी है। इस एकांगी विचारधाराके कारण ही मानव अनुचित प्रवृत्ति करते हुए भी अपनेको धर्मात्मा और महात्मा मानने लगे हैं। अतः एकान्त विचारधाराको छोड़कर स्याद्वादी विचारधाराका प्रयत्न किया जाय तो समाजका कल्याण हो।

संकल्प-विकल्प

३१ मईके प्रातःकाल समयसारका प्रवचन करते हुए **पं० वंशीधरजी व्याकरणाचार्य बीनाने कहा—**

आत्मकल्याणके लिये सबसे आवश्यक अंग सम्यग्दर्शन है। संसारका प्रत्येक प्राणी सुख चाहता है, सुखकी उपलब्धि मोक्षमें होती है अतः उसकी ओर ही ज्ञानी जीवका पुरुषार्थ होता है। उसके पुरुषार्थोंका पहला कदम सम्यग्दर्शन है। समन्तभद्रस्वामीने यथार्थ देव-शास्त्र-गुरुका, तीन मूढताओं तथा आठ मदोंसे रहित एवं आठ अंगोंसे सहित श्रद्धान करनेको सम्यग्दर्शन कहा है। उमा-स्वामीने तत्त्वार्थश्रद्धानको सम्यग्दर्शन बताया है और कुन्दकुन्द स्वामीने अबद्धस्पृष्ट तथा असंयुक्त आदि विशेषणोंसे युक्त आत्माके श्रद्धानको सम्यग्दर्शन कहा है। सम्यग्दर्शनके सब लक्षण इसी लक्षणके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साधक हैं। सीधे सादे शब्दोंमें कहा जाय तो पदार्थका सही-सही रूप अपनी बुद्धिमें अंकित हो जाय, यही सम्यग्दर्शन है। पदार्थके सही स्वरूपको समझनेके लिये उसके असाधारण—विशिष्ट गुणों पर तो दृष्टि दी ही जाती है पर अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व प्रमेयत्व, अगुरु-लघुत्व और प्रदेशवत्त्व इन छह साधारण गुणों पर भी दृष्टि देना आवश्यक है। इनके बिना वस्तुकी पूर्णता नहीं होती। यहाँ संक्षेपसे इन गुणोंके स्वरूप पर विचार करना है। पहला अस्तित्व गुण है।

अस्तित्वगुण—अस्तित्वगुणका अर्थ सत्ता अर्थात् मौजूदगी है। मौजूदगी ही पदार्थका पहला लक्षण है। पञ्चाध्यायीकारने कहा है—

तत्त्वं सल्लाक्षणिकं सन्मात्रं वा यतः स्वतः सिद्धम्।
तस्मादनादिनिधनं स्वसहायं निर्विकल्पं च॥

तत्त्व अर्थात् पदार्थ सत् लक्षण वाला है। अथवा गुण-गुणीके अभेद कथनकी अपेक्षा सत्रूप ही है, स्वतः सिद्ध है—किसी अन्य व्यक्तिके द्वारा बनाया हुआ नहीं है, अनादिनिधन है, स्वसहाय है और निर्विकल्प है।

सीधा अर्थ यह है कि संसारके अन्दर ऐसा एक भी पदार्थ नहीं है जो अस्तित्व गुणसे रहित हो।

दूसरा **वस्तुत्वगुण** है।

वस्तुत्वगुण—वस्तुत्वगुणका अर्थ है—**'अर्थक्रियाकारित्त्वं वस्तुत्वं'** अर्थात् अर्थक्रियाकारी होना ही वस्तुका वस्तुत्व है। तृषा निवारण, वस्त्रप्रक्षालन, तथा स्नान आदि पानीके कार्य हैं, इन कार्योंसे पानीकी यथार्थता जानी जाती है। मृगतृष्णामें यह सब नहीं होते इसलिये वह पानी नहीं है किन्तु भ्रममात्र है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तीसरा गुण द्रव्यत्व है।

द्रव्यत्व गुण—परिणमनशीलताको द्रव्यत्व कहते हैं। द्रव्यकी यह परिणमनशीलता स्वप्रत्यय और स्वपरप्रत्ययके भेदसे दो प्रकारकी होती है। धर्म, अधर्म, आकाश और काल इनकी परिणमनशीलता स्वप्रत्यय है। यद्यपि इनमें भी कालद्रव्यकी अपेक्षा स्वपरप्रत्ययपना आता है पर उसको यहाँ विवक्षा नहीं की गई है। जीव और पुद्गल, इन दो द्रव्योंकी परिणमनशीलता स्वप्रत्यय और स्वपरप्रत्यय—दोनों प्रकारकी होती है। प्रत्ययका अर्थ कारण है अर्थात् निमित्तकारण है। यद्यपि निमित्तकारण स्वयं कार्यरूप परिणमन नहीं करता है तथापि वह कार्यकी सिद्धिमें आवश्यक है। उपादान स्वयं कार्यरूप परिणत होता है अतः उपादानोपादेयभाव एक द्रव्यमें बनता है। कर्तृकर्मभावका निरूपण भी आचार्योंने एक ही द्रव्यमें किया है। निमित्त-नैमित्तिक भाव दो द्रव्योंमें बनता है। कुन्दकुन्दस्वामीने

जीवपरिणामहेदुं कम्मत्तं पुग्गला परिणमंति।
पुग्गलकम्मणिमित्तं तहेव जीवो वि परिणमइ॥

इस गाथामें कहा है कि जीवके परिणाम—रागादिभावरूप हेतुको पाकर पुद्गल स्वयं कर्मरूप परिणमन करते हैं और पुद्गलकर्मको निमित्त पाकर जीव भी रागादिरूप परिणमन करता है।

जीवका विभावपरिणमन अनिमित्तिक नहीं है।

चौथा प्रमेयत्व गुण है।

प्रमेयत्व गुण—जो प्रमाणका विषय है अर्थात् किसी-न-किसीके ज्ञानका विषय है वह प्रमेय कहलाता है। संसारमें ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जो किसीके ज्ञानका विषय न हो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पाँचवाँ अगुरुलघुत्व गुण है।

अगुरुलघुत्व—अगुरुलघुत्वका अर्थ है—एक द्रव्यका दूसरे द्रव्य-रूप नहीं परिणमना। जीव कभी पुद्गलरूप नहीं होता और पुद्गल कभी जीवरूप नहीं होता। एक द्रव्यका दूसरे द्रव्यमें अत्यन्ताभाव रहता है। अत्यन्ताभावका अर्थ है जो त्रिकालमें भी उसरूप न हो सके।

छठवां प्रदेशवत्व गुण है।

प्रदेशवत्व—प्रदेशवत्वका अर्थ प्रदेशोंसे सहित होना। जीव, धर्म और अधर्म ये तीनों द्रव्य असंख्यात प्रदेशी हैं, कालद्रव्य एक प्रदेशी है, आकाश अनन्त प्रदेशी है और पुद्गल संख्यात, असंख्यात तथा अनन्त प्रदेशी है। पुद्गलका परमाणु एक प्रदेशी ही है परन्तु स्कन्धमें संख्यात, असंख्यात और अनन्त प्रदेश होते हैं। इस प्रदेश-वत्वगुणके कारण द्रव्यका कोई-न-कोई आकार अवश्य होता है। आकारके बिना वस्तु खरविषाणवत् होती है अर्थात् अस्तित्वसे रहित होती है।

इसप्रकार सम्यग्दृष्टि, पदार्थके यथार्थस्वरूपको जानकर उसकी दृढ़ प्रतीति करता है। सम्यग्दृष्टि जीव मोक्षमार्गी कहलाता है। उसकी परिणति ही बदल जाती है। मिथ्यादृष्टि जीव संकल्प और विकल्पमें फंसा रहता है पर सम्यग्दृष्टि जीव उनसे उभरने लगता है। विकल्प उतना हानिकर नहीं होता जितना कि संकल्प। विकल्प तो श्रुतज्ञानका अंश है परन्तु संकल्प मोहजनित इच्छाओंका जाल है। सम्यग्दृष्टिकी इच्छाओंका जाल आगे-आगे कम होता जाता है। प्रथम गुणस्थानसे लेकर तृतीय गुणस्थान तकके जीवकी इच्छाएँ दर्शनमोहके साथ रहती हैं परन्तु चतुर्थादि गुणस्थानवर्ती जीवकी इच्छाएँ मात्र चरित्रमोहजनित होती हैं अतः उनका रूप ही दूसरा होता है। सम्यग्दृष्टि भोजन तो करता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है परन्तु भोजनमें अमुक वस्तु ही होना चाहिये, ऐसा भाव उसका नहीं होता। सम्यग्दृष्टि कपड़ा तो पहिनता है परन्तु ऐसा ही कपड़ा होना चाहिये यह उसका अभिप्राय नहीं रहता। सम्यग्दृष्टि जीवके ज्ञान और वैराग्यकी शक्ति नियमसे होती है, अतः इन शक्तियोंके अनुरूप ही प्रवृत्ति होती है।

अरहन्तके ज्ञानका फल

रात्रिके आठ बजेसे पुरुषार्थसिद्ध्युपायका विवेचन करते हुए **श्री ब्र० राजारामजी भोपालने** कहा—

यदि मोहका विलय करना चाहते हो तो अरहंतको जानो। कुन्दकुन्दस्वामीने प्रवचनसारमें कहा है—

जो जाणादि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं।
सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्स लयं॥

जो द्रव्य, गुण और पर्यायोंके द्वारा अरहंतको जानता है वह आत्माको जानता है और जो आत्माको जानता है उसका मोह नियमसे विलीन होता है।

मोहका विलीन हो जाना मानो कर्मशत्रुओंपर विजय प्राप्त कर लेना है। आठ कर्मोंमें मोह कर्म ही प्रबल है यदि वह नष्ट हो गया तो बाकी कर्मोंके नष्ट होनेमें देर नहीं लगती। अरहंतका द्रव्य और हमारा द्रव्य एक है—एक समान है परन्तु अरहंत तो अपनी साधनासे भगवान् बन गये और हमारा कुछ ठिकाना ही नहीं है। अरहंतके और अपने ज्ञानादि गुणोंकी तुलना करते हुए ध्यान देना चाहिये कि ज्ञान सामान्य तो हममें और उनमें एकसा ही है परन्तु उनका ज्ञान केवलज्ञानरूप होगया अर्थात् ज्ञानगुणके चरम विकासको प्राप्तकर चुका है और हमारा ज्ञान मतिश्रुतज्ञानरूप ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिणमन कर रहा है। अरहंत सर्वज्ञ बन चुके हैं पर हमारे पीछे कौन बैठा है ? यह भी नहीं जान पाते। इस प्रकार अरहंत और अपने आत्माकी तुलना करता हुआ जो अरहंतको जानता है वह आत्माको जानता है। अहो ! जो आत्मा अरहंत प्रभुका है वही आत्मा मेरा है फिर अन्तर कहाँ पड़ रहा है ? उनकी आत्मा वीतराग और सर्वज्ञ दशाको प्राप्त है परन्तु हमारा अभी कोई ठिकाना नहीं है। दर्पण देखनेसे जिसे यह मालूम हो गया है कि हमारे चेहरे पर कालोंस लगी है वह उस कालोंसको छुटाये बिना नहीं रहता। इसी प्रकार अरहंतरूपी दर्पणमें जिसने आपको देखा है और आपमें लगी हुई मोहजन्य कालोंसको देखा है वह उसे छुटाये बिना नहीं रह सकता। इस कालोंसको छुटा देना हो तो मोहका विलय होती है।

मोक्ष तत्त्व

रात्रिके ९ बजे मोक्ष तत्त्वका व्याख्यान करते हुए **श्री पं० वंशीधर जी इन्दौरने** कहा—

आज मुझे मोक्ष तत्त्वका वर्णन करनेके लिये कहा गया है। मोक्षशब्दका अर्थ छूटना है, अतः मोक्षशब्द ही बद्धदशाका संकेत है। पहले बद्धदशा होगी तभी तो उससे छूटने रूप मुक्तदशा हो सकेगी। जीवकी बद्धदशा अनादि कालीन है। इसका यह मतलब नहीं लगाना चाहिये कि वह कभी नष्ट नहीं होगी। भव्य जीवकी बद्धदशा अनादि सान्त हैं। आचार्योंने कहा है—

कश्चिज्जीवः कृत्स्नकर्मभिर्विप्रमुच्यते, बन्ध हेत्वभावनिर्जरावत्त्वात्'

अर्थात् कोई जीव समस्त कर्मप्रदेशोंसे विप्रमुक्त होता है क्योंकि वह बन्धकारणोंके अभाव और निर्जरासे युक्त होता है। तत्त्वार्थ सूत्रकारने भी मोक्षका यही लक्षण कहा है—**बन्धहेत्वभावनिर्ज-**

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः' बन्धहेत्वभाव अर्थात् संवर और निर्जराके द्वारा समस्त कर्मोंका विशेषेण प्रकर्षेण च—विशेष और प्रकर्षताके साथ छूट जाना मोक्ष है। यह मोक्ष मोहक्षयपूर्वक होता है। पहले मोहका क्षय होनेसे केवलज्ञान प्राप्त होता है और उसके बाद मोक्ष प्राप्त होता है। नामके आदि अक्षरसे संपूर्ण नामको बोध होता है अतः 'मो' से मोह और 'क्ष' से क्षयका बोध होता है। इस प्रकार मो० क्ष० शब्द ही मोहक्षयको सूचित करता है। मोह, बन्धका कारण है तो उसका क्षय मोक्षका कारण अवश्य होगा।

'मलादेर्वैकल्यं हि मण्यादेर्नैर्मल्यं' मल आदिका अभाव होना ही मणि आदिकी निर्मलता है। इसी प्रकार भावकर्म और द्रव्य कर्मरूप मलका अभाव होना ही आत्मा की निर्मलता है। आत्मा की निर्मलता कहो या मोक्ष, एक ही बात है। पहले भावमोक्ष होता है पीछे द्रव्यमोक्ष। भावोंकी मलीनता ही इस जीवको परेशान करती है **'परः ईशानो यस्य स परेशानः'** इस व्युत्पत्तिके अनुसार परेशानका अर्थ परतन्त्र होना है। लोकमें परेशानका अर्थ कष्ट-दशापन्न होता है। आत्मा यद्यपि अनन्तशक्ति सम्पन्न है तथापि मोहजनित मलिनता उसकी उस अनन्त शक्तिको प्रकट नहीं होने देती। सब जानते हैं कि पानी आगीको बुझा देता है आग पर पानी पड़ा और आग बुझी। परन्तु जब पानी और आगके बीच एक सूत मोटी ताँबा, पीतल आदि की चद्दर होती है तब वह आग पानी को भाफ बना बनाकर समाप्त कर देती है। इसीप्रकार आत्मा और कर्मके बीच यदि मोहजन्य मलिनता रूपी चद्दर विद्यमान है तो कर्म आत्मा को अत्यन्त दुखी कर देते हैं। जो आत्मा कर्मोंको नष्ट करने का सामर्थ्य रखती है वह मोहजन्य मलिनताके सद्भावमें समय-प्रबद्ध प्रमाण कर्मोंके द्वारा बद्ध हो जाती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सांख्यकारिकामें कहा है—

धर्मेण गमनमूर्ध्वं गमनमधस्ताद्भवत्यधर्मेण ।
ज्ञानेन चापवर्गो विपर्ययादिष्यते बन्धः ॥

धर्मसे ऊर्ध्वगमन होता है अर्थात् स्वर्गकी प्राप्ति होती है, अधर्मसे नीचे गमन होता है अर्थात् नरककी प्राप्ति होती है, ज्ञानसे अपवर्ग—मोक्ष प्राप्त होता है और अज्ञानसे बन्ध होता है।

यदि कर्मबन्धसे बचना है तो अज्ञानसे बचो। यहाँ अज्ञानका अर्थ मोहोदयसे दूषित मिथ्याज्ञान है। मोक्षाभिलाषी जीवको उससे दूर रहना चाहिये। यह जीव मोक्षप्राप्तिके लिये प्रयत्न तो करता है परन्तु स्वरूपकी ओर लक्ष्य न होनेसे उसका वह प्रयत्न सफल नहीं हो पाता। एक ओर पत्थरोंका ढेर लगा था और एक ओर जलाशय था। पत्थरोंकी ढेरमें 'पारसमणि है' यह सुनकर उसे प्राप्त करनेके लिये कोई तैयार हुआ। 'पारसमणिके घिसनेसे लोहा सुवर्णमय हो जाता है' यह सुनकर पत्थरोंके ढेरसे एक पत्थर उठाता और लोहे पर घिसकर झटसे जलाशयमें फेंक देता। यह करते-करते एकबार पारसमणि उसके हाथमें आया, संस्कारवश उसने उसे लोहे पर घिसा और पानीमें फेंक दिया। पानीमें फेंक देनेके बाद जब लोहाको देखता है तो वह सुवर्णमय दिखता है। परन्तु पारसमणिको तो वह संस्कार वश पानीमें फेंक चुका था। अब उसकी पुनः प्राप्ति दुर्भर हो गई। इसीप्रकार संस्कारवश यह जीव शरीराश्रित क्रियाएँ तो बहुत करता है परन्तु स्वभावकी ओर लक्ष्य नहीं देता। क्रियाओंके करनेका निषेध नहीं है। अपने पदके अनुरूप क्रियाओं का करना आवश्यक है। परन्तु उन क्रियाओंको करते हुए अपने वीतराग स्वभावकी ओर लक्ष्य भी तो रक्खो। उसके बिना खाली क्रियाओंसे क्या होने जाने वाला है? अमृतचन्द्र सूरिने कहा है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सिद्धान्तोऽयमुदात्ताचित्तचरितैर्मोक्षार्थिभिः सेव्यतां
शुद्धं चिन्मयमेकमेव परमं ज्योतिः सदैवास्म्यहम् ।
एते ये तु समुल्लसन्ति विविधा भावाः पृथग्लक्षणा-
स्तेऽहं नास्मि यतोऽत्र ते मम परद्रव्यं समग्रा अपि ॥

मोक्षाभिलाषी जीवोंको अपने चित्तकी प्रवृत्तिको उदात्त बनाकर निरन्तर इस सिद्धान्तकी उपासना करना चाहिये कि मैं तो एक शुद्ध चैतन्य ज्योतिःस्वरूप ही हूँ। ये जो नानाप्रकारके विकारीभाव समुल्लसित हो रहे हैं वे सबके सब परद्रव्य हैं, मेरे नहीं।

इतना पुरुषार्थ तो प्रत्येक जीवको करना चाहिये कि वह स्वभाव और विभावको समझ सके। गोताखोर मनुष्य अपने मुँहमें तेल भरकर गोता लगाता है। तलहटीमें पहुँचने पर वह तेलको बुलक देता है जिससे वहाँकी सब वस्तुएँ उसको स्पष्ट दिखाई देने लगती है—यह मगर है, यह मच्छ है, यह प्रवाल है, यह मोती है। इसीप्रकार मोक्षार्थी पुरुष भेदविज्ञानके प्रकाशमें स्व और परको अच्छी तरह समझने लगता है। परको समझकर जो उसका परित्याग करता है और अपने स्वरूपमें संवृत रहता है वही बन्धसे बचना है। कहा है—

परद्रव्यग्रहं कुर्वन् बध्येतापराधवान् ।
बध्येतानपराधो ना स्वद्रव्ये संवृतो मुनिः ॥

परद्रव्यको ग्रहण करनेवाला मनुष्य अपराधी कहलाता है और अपराधी होनेसे बन्धको प्राप्त होता है परन्तु जो मुनि स्वकीय द्रव्यमें—अपने ज्ञाता-द्रष्टा स्वरूपमें संवृत रहता है वह अपराधी नहीं कहलाता और इसलिये बन्धको प्राप्त नहीं होता।

यह जीव शेखचिल्लीके समान अपने आप नाना संकल्पोंको उत्पन्न करता है और उनमें निमग्न हो दुःख उठाता है। एक गाँवमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शेखचिल्ली नामका एक आदमी रहता था। गरीब होनेसे मजदूरी करता था। एक बार एक तेलिनने उससे कहा—भैया, शेखचिल्ली हमारी यह तेलकी मटकी हमारे घर पहुँचा दो, दो पैसे तुम्हें दूंगी। दो पैसे मिलनेकी आशासे शेखचिल्लीने तेलकी मटकी अपने सिरपर रख ली। चलते-चलते वह सोचता है कि दो पैसोंसे अमुक चीज लाकर बाजारमें बेचूँगा तो दो आने हो जावेंगे और दो आनेकी अमुक चीज लाकर बेचूंगा तो दो रुपये हो जावेंगे। धीरे-धीरे मैं बड़ा आदमी हो जाऊंगा, एक मकान बनवा लूंगा, घरमें स्त्री आ जायगी, बाल-बच्चे हो जावेंगे, दुपहरके समय बच्चे आकर कहेंगे—'दद्दा, रोटी हो गई, भोजन कर लो'। तब मैं अकड़ कर कहूँगा कि कर लूंगा, अभी क्या जल्दी है? इसी धुनमें उसने सिर हिलाया, जिससे तेलकी मटकी नीचे गिरकर फूट गई, तेल बह गया। तेलिन कहती है—यह तूने क्या किया? हमारी मटकी फोड़ दी, तेल बेकार कर दिया। शेख चिल्लीने कहा कि तेरी तो मटकी ही फूटी है पर मेरी तो गृहस्थी चौपट हो गई। वास्तवमें यही हाल संसारके प्राणियोंका हो रहा है।

करिष्यामि करिष्यामि करिष्यामीति चिन्तया।
मरिष्यामि मरिष्यामि मरिष्यामीति विस्मृतम्॥

करने करनेकी चिन्तामें यह जीव मरनेकी बात भूल जाता है। अपनी इच्छाओंको निरन्तर बढ़ाता ही रहता है। पर उनकी पूर्ति नहीं कर पाता। एक कविने कहा—

निःस्वो निष्कशतं शती दशशतं लक्षं सहस्राधिपो।
लक्षेशः क्षितिपालतां क्षितिपतिश्चक्रेशतां वांछति।
चक्रेशः पुनरिन्द्रतां सुरपतिर्ब्राह्मं पदं वांछति।
ब्रह्मा विष्णुपदं हरिर्हरपदं ह्याशावधिं को गतः॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिसके पास कुछ नहीं है वह सौ मुहरें चाहता है, सौ मुहरों-वाला हजार चाहता है, हजारवाला लाख चाहता है, लाखवाला राजा बनना चाहता है, राजा चक्रवर्ती होना चाहता है, चक्रवर्ती इन्द्र पद चाहता है, इन्द्र ब्रह्मा बनना चाहता है, ब्रह्मा विष्णु पदकी इच्छा रखता है और विष्णु शंकर बनना चाहता है। वास्तवमें आशाकी सीमाको कौन प्राप्त हुआ है ? अर्थात् कोई नहीं।

विस्तार बहुत हो गया, नहीं तो बताता कि योग, बौद्ध, वैशेषिक, सांख्य, वेदान्ती आदि मोक्षका कैसा स्वरूप मानते हैं, उस स्वरूपमें कहां क्या खामी है ? इसकी चर्चा करता। यह भी बताता कि किस गुणस्थानमें किन-किन कर्मप्रकृतियोंका क्षय होकर अन्तमें मोक्ष प्राप्त होता। परन्तु उसकी आवश्यकता नहीं देखता।

शुद्धनयने आत्माका जो स्वभाव कहा है उसीको प्राप्त करनेका प्रयत्न होना चाहिये।

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णयं णियदं।
अविसेसमसंजुत्तं तं सुद्धणयं विजाणाहि॥

जो आत्माको अबद्धस्पष्ट, अनन्य, नियत, अविशेष, और परके संयोगसे रहित देखता है उसे शुद्धनय जानो।

यही भाव अमृतचन्द्र स्वामीने **'आत्मस्वभावं परभावभिन्नं'** तथा **'एकत्वे नियतस्य शुद्धनयतो व्याप्तुर्यदस्यात्मनः'** आदि कलश काव्योंमें कहा है।

आजकल वक्ता लोग श्रोताओंको खुश करनेका भाव रखते हैं। इसलिये इधर उधरकी चर्चाको कर आत्मतत्त्वको अछूता छोड़ देते हैं। परन्तु यह निश्चित है कि उसके छोड़ देनेसे न श्रोताओंको लाभ होगा और न वक्ताओंका वक्तापन सफल होगा। कहा है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विद्वन्मन्यतया सदस्यतितरामुद्दण्डवाग्डम्बराः
शृङ्गरादिरसैः प्रमोदजनकं व्याख्यानमातन्वते।
एते च प्रतिसद्म सन्ति बहवो व्यामोहविस्तारिणो
येभ्यस्तत्परमात्मतत्त्वविषयं ज्ञानं तु ते दुर्लभाः॥

अपनेको विद्वान् माननेवाले तथा सभामें उद्दण्डवचनोंका आडम्बर करनेवाले वक्त शृङ्गारादिरसोंसे आनन्दजनक व्याख्यान करते हैं सो व्यामोहको विस्तृत करनेवाले ऐसे वक्ता घर-घरमें विद्यमान हैं परन्तु जिनसे परमात्मतत्त्वविषयक ज्ञान प्राप्त होता है वे वक्ता दुर्लभ हैं।

विषयका समारोप यह है कि आत्माको समझो, उसके स्वभाव और विभावकी पहिचान करो और विभावके कारणोंको समझकर उन्हें दूर करनेका पुरुषार्थ करो, मोक्ष अवश्य प्राप्त होगा।

श्रुतसप्ताहका समारोपभाषण

व्याख्यानमालाके अन्तर्गत श्रुतसप्ताहका समारोप—भाषण करते हुए **पं० पन्नालालजीने** कहा—

मैंने जिस उद्देश्यसे श्रुतसप्ताहका आयोजन करनेके लिये आपको प्रेरित किया था उसमें कुछ सफलता मिली है। बच्चोंमें धार्मिक संस्कार बढ़ें, जैनधर्मके मूलतत्त्व जाननेकी भावना उनके हृदयमें उत्पन्न हो, यह मेरी भावना थी। बालक-बालिकाओंने इस ओर अपनी रुचि प्रकट की, इससे प्रसन्नता होती है। हमारे विद्वानोंने सात दिन तक घोर परिश्रम उठाकर आपको जो बौद्धिक सामग्री दी है वह साधारण नहीं है, उसको प्रसारित करना तथा सुरक्षित रखना आपका कर्तव्य है। श्रुतसप्ताहके अन्दर अपने नगरके प्राचीन ग्रन्थोंकी संभाल कीजिये और नये ग्रन्थ मन्दिरोंमें तथा अपने घरोंमें बुलाइये। प्रत्येक मन्दिरवालोंको वर्षमें सौ पचास रुपयेके ग्रन्थ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बुलानेका बजट रखना चाहिये। इसी प्रकार हम गृहस्थोंको भी अधिक नहीं तो वर्षमें पच्चीस रुपयेके शास्त्र अवश्य खरीदना चाहिये। बच्चोंको धार्मिक शिक्षा देनेवाली रात्रिशालाओंमें अवश्य भेजना चाहिये तथा स्वयं भी शास्त्र-सभाओंमें शामिल होकर आत्मकल्याणका मार्ग प्राप्त करना चाहिये।

श्रीमान् क्षुल्लकजी महाराज, श्रीमान् पं० वंशीधरजी न्यायालंकार, पं० वंशीधरजी व्याकरणाचार्य, ब्र० राजारामजी भोपाल और हमारे स्थानीय समस्त विद्वानोंने जो श्रम उठाया है उसके लिये मैं अत्यन्त आभारी हूँ। ऐसे आयोजन अपने नगरमें प्रतिवर्ष होते रहें, ऐसी व्यवस्था होना चाहिये। सागर, सागर ही है। यहाँ प्रत्येक अच्छे काम सरलतासे सम्पन्न हो जाते हैं सिर्फ उन्हें दिशा दिखानेवाला चाहिये।

मैं प्रयत्न करूँगा कि यह सामग्री **श्रुतसप्ताह-नवनीत**के नामसे प्रकाशित हो जाय और उससे यहाँके तथा बाहरके लोग भी लाभ उठा सकें।

यद्यपि श्रुतसप्ताह आज समाप्त हो रहा है और समारोप-भाषण भी मैंने दे दिया है। पर इस सप्ताहमें विद्वानोंकी गोष्ठीमें जो शंकाएँ आई हैं, और जिनपर विद्वानोंने ऊहापोह किया है उन्हें व्यवस्थित कर लिपिबद्ध करा देनेके लिये मैंने श्रीमान् पं० वंशीधरजीसे प्रार्थना की थी। प्रसन्नता है कि उन्होंने अपना दो दिनका समय और भी दिया। इन दिनोंमें प्रातःकाल आपका प्रवचन होगा और मध्याह्नमें मैं शंकाओंका समाधान लिपिबद्ध करूँगा। कक्षाएँ बन्द रहेंगी।

टेढ़ी खीर और सामला बाजा

२ जूनको प्रातःकाल भावविभोर होते हुए **पं० वंशीधरजी इन्दौरने** गद्गद कण्ठसे कहा कि आतिशबाजीमें बारुदसे भरी हुई

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चकरी तबतक घूमती रहती है जबतक उसके अन्दर बारुदका एक कण भी मौजूद रहता है। इसी प्रकार विकारी भावोसे भरा हुआ यह जीव चतुर्गतियोंमें तबतक चक्कर लगाता रहता है जबतक उसमें रागद्वेषादिकका एक अंश भी मौजूद रहता है।

रागादिक विकारी भावोंका समझना कठिन नहीं है परन्तु छोड़ना कठिन है। एक जीव तो ऐसे हैं जो रागादिकको आत्माका स्वभाव मानकर चलते है। स्वभाव मानने वाले जीव उन्हें कभी नष्ट नहीं कर सकते। एक जीव ऐसे हैं जो उन्हें विकार तो समझते हैं परन्तु छोड़नेमें असमर्थ है। ऐसे जीव समय पाकर उन्हें छोड़नेमें समर्थ हो जाते है।

संसारके द्रव्य शुद्ध और अशुद्धके भेदसे दो प्रकारके हैं। इनमें धर्म, अधर्म आकाश और काल ये चार द्रव्य तो सदा शुद्ध ही रहते हैं। परन्तु जीव और पुद्गल ये दो द्रव्य अशुद्ध तथा शुद्ध—दोनों प्रकारके हैं। जबतक जीवका परद्रव्य-पुद्गल तथा पुद्गल जन्य रागादिकके साथ सम्बन्ध रहता है तबतक वह अशुद्ध कहलाता है और जब उसका सम्बन्ध छूट जाता है तब शुद्ध हो जाता है। इसी प्रकार जीवके सम्बन्धसे जबतक पुद्गलमें कर्मस्कन्धरूप परिणमन रहता है तबतक वह अशुद्ध कहलाता है और जब उसका स्वाश्रित परिणमन होने लगता है तब शुद्ध कहलाता है।

लोग कहते हैं कि 'एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका कुछ नहीं करता' परन्तु इसका अर्थ समझते नहीं है। इसका तो इतना ही अर्थ है कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप परिणमन नहीं करता। इसी दृष्टिसे एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका कर्ता नहीं है। कर्तृकर्मभाव जुदा है और निमित्त-नैमित्तिक भाव जुदा है। निमित्त भी साक्षात् निमित्त और परम्परा निमित्तके भेदसे दो प्रकारका होता है। कुन्दकुन्द स्वामी-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ने जीव और कर्मरूप पुद्गलमें कर्तृकर्मभावका निषेध करते हुए भी निमित्त-नैमित्तिक भाव स्वीकृत किया है। निमित्त अकिंचित्कर नहीं है। उसके सन्निधानमें—उपस्थितिमें कार्य होता है इसका यह अर्थ नहीं है कि वह अकिंचित्कर है। यदि निमित्त अकिंचित्कर होता तो जीवकी संसारदशा ही नहीं होती। जिसके साथ अन्वय-व्यतिरेक होता है अर्थात् जिसके रहते हुए कार्य होता है और न रहते हुए नहीं होता वही निमित्त कहलाता है। यदि उपस्थित मात्र ही निमित्त माना जाता है तो घड़ा बनाते समय गधा भी वहाँ उपस्थित रहता है वह भी घड़ाका निमित्त कहा जायगा।

कार्यकी उत्पत्तिमें निमित्त और उपादान दोनों कारण आवश्यक होते हैं। अकेले निमित्तसे या अकेले उपादानसे कार्य नहीं होता। प्रत्यक्षसिद्ध एवं अनुभवमें आनेवाली कार्य-कारणकी व्यवस्थाका अपलाप नहीं किया जा सकता। प्राकृतभाषाके **'णिमित्त'** शब्दकी संस्कृत छाया **'निमित्र'** भी होती है जिसका अर्थ होता है **'निश्चितं मित्रं निमित्रं'** अर्थात् कार्यकी सिद्धिमें निश्चित सहायक। निमित्त, उपादानका निश्चित मित्र है जब उपादान और निमित्त—दोनोंकी अनुकूलता होती है तभी कार्य होता है। यह निश्चित है कि निमित्त स्वयं कार्यरूप नहीं परिणमता, कार्यरूप परिणति उपादानकी ही होती है पर वह निमित्तके सहयोगसे ही होती है। **'अनेककारणसाध्यं हि कार्यम्'** कार्य नाना कारणोंसे सिद्ध होता है।

एक राजाके दरबारमें बहुतसे लोग अपना-अपना बाजा बजा रहे थे। एक चालाक आदमीको बाजा नहीं मिला तो वह खाट का एक पाया लेकर बीणाके समान एक लकड़ीको चलाता हुआ तुन तुन करने लगा। सब बाजोंकी आवाजमें उसकी आवाज अलगसे मालूम नहीं होती थी। राजा बजानेवालोंसे बहुत खुश

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हुआ और सबको इनाम देने की घोषणा करने लगा। दूसरे बाजे वालोंने देखा कि इसके पास बाजा तो है नहीं, यह मुफ्तमें ही इनाम लिये जा रहा है। तब सबने राजासे कहा कि महाराज ! सब लोगोंसे अलग बाजा बजवा कर इनाम दिया जाय। राजाने बात मान ली, जिनके पास बाजे थे उन्होंने उनकी मधुरध्वनि बजा दी। जब खाटका पाया बजाने वाले का नम्बर आया तब राजाने कहा—यह कौनसा बाजा है, इसकी ध्वनि बजाओ ? वह चालाक तो था ही। उसने कहा महाराज ! यह **सामला बाजा** है सबके सामिलात ही बजता है अकेला नहीं बजता है।

यह तो दृष्टान्त है, जैसे उसका सामला बाजा सबके सामिलात बजता था वैसे ही कार्य भी सब कारणकूटोंके मिलने पर ही होता है (हास्य) यह बात जुदी है कि कही उपादानकी प्रधानतासे कथन होता है और कहीं निमित्तकी प्रधानतासे। परन्तु दोनों कारण रहते सापेक्ष है, निरपेक्ष रह कर वे कार्य सिद्ध नहीं कर सकते। आचार्योंने पात्रकी योग्यता देखकर विभिन्न नययोंसे कथन किया है। उनकी उस नयविवक्षाको समझना हमारा काम है और समझाना वक्ताओंका काम है। उपादान दृष्टिका क्या भाव है और निमित्त दृष्टिका क्या भाव है ? यह तो समझना चाहिये।

दुःख तब होता है जब लोग वस्तुतत्त्वको तोड़ मरोड़ कर उसको अन्यथा प्रतिपादन करते हैं। अज्ञानवश लोग सही वस्तुस्वरूपको ग्रहण नहीं कर पाते। एक सूरदाससे किसीने कहा—सूरदास आज खीर बनी है, खाओगे ? सूरदास जन्मसे अन्धा था, अतः उसने कभी खीर देखी ही नहीं थी। वह उससे पूछता है कि खीर कैसी होती है ? उसने कहा सफेद होती है। कैसी सफेद ? ऐसा पूछने पर उसने कहा—बगुला जैसी सफेद। सूरदासने बगुला भी नहीं देखा, इसलिये वह स्पर्शन इन्द्रियके माध्यमसे सूरदासको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बगुला कैसा होता है, यह समझाने लगा। वह अपने हाथको टेढ़ा कर तथा सूरदासके हाथको उसका स्पर्श कराता हुआ बोला कि जिसकी चोंच ऐसी टेढ़ी होती है वह बगुला कहलाता है। सूरदास उसके हाथका स्पर्श करता हुआ बोला—भाई माफ करो, यह टेढ़ी खीर कैसे खाई जावेगी ? मुझे नहीं खाना है। (हास्य) कहने का मतलब यह है कि आचार्यने जिस विवक्षासे वस्तुस्वरूप का प्रतिपादन किया है उस विवक्षाको हमें समझना चाहिये।

कुछ शंकाओंके समाधान

२५ मईसे लेकर १ जून सन् १९७१ तक प्रतिदिन ३ बजेसे ४॥ बजे तक श्री पं० बंशीधरजी इन्दौरके निवासस्थान पर विद्वद्-गोष्ठी होती थी। विद्वानोंके सिवाय अन्य जनता भी संमिलित होती थी। गोष्ठीमें आये हुए प्रश्नोंका उत्तर इस प्रकार है—

१ प्रश्न—परमपारिणामिकभाव क्या है ?

१ उत्तर—जीवके अन्यनिरपेक्ष—स्वतः सिद्ध, अनादिनिधन, ज्ञायकस्वभावको परमपारिणामिक भाव कहते हैं। इसकी त्रैकालिकता सिद्ध करनेके लिये कहीं इसे टङ्कोत्कीर्ण विशेषणसे विशिष्ट किया गया है।

२ प्रश्न—जीवद्रव्य, जीवपदार्थ, जीवास्तिकाय और जीवतत्त्वमें परस्पर क्या अन्तर है ?

१ उत्तर—पद, अर्थ और ज्ञानके भेदसे पदार्थ तीन प्रकारके हैं। वक्ता अपने अभिप्रेत पदार्थको प्रकट करनेके लिये जिस पद (शब्द) का प्रयोग करता है उसे पद कहते हैं। जैसे ज्ञानदर्शनलक्षणवाले अभिप्रेत अर्थको प्रकट करनेके लिये वक्ताने जीवपद (जीवशब्द) का प्रयोग किया, यह जीवपद है। इसका वाच्यभूत ज्ञानदर्शन लक्षणवाला जो पदार्थ है वह **जीवपदार्थ** है। श्रोताके ज्ञानमें जो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसकी आकृति या विशिष्टता झलकती है वह **ज्ञानजीव** है। इसी पदार्थका कालद्रव्यका आश्रय लेकर जब उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य रूप परिणमन विवक्षित होता हैं तब उसे **जीवद्रव्य** कहते हैं। जब क्षेत्रकी अपेक्षा उसके विस्तारकी विवक्षा होती है तब उसे **जीवास्तिकाय** कहते हैं और भावकी अपेक्षा जब उसके ज्ञायकस्वभावकी विवक्षा होती है तब उसे **जीवतत्त्व** कहते हैं।

३ प्रश्न—सम्यग्दृष्टिके बन्ध नहीं होता, इसका क्या रहस्य है।

३ उत्तर—यहाँ आचार्यकी तीन विवक्षाएं हैं—प्रथम यह कि सम्यग्दर्शन बन्धका कारण नहीं है। सम्यग्दर्शनके कालमें चतुर्थादि गुणस्थानोंमें जो बन्ध होता है वह उस कालमें पाये जाने वाले रागादिभावोंके कारण होता है, सम्यग्दर्शनके कारण नहीं। जहां सम्यग्दर्शनको देवायु आदि पुण्यप्रकृतियोंके बन्धका कारण बताया है वहां उपचरित कथन समझना चाहिये। द्वितीय विवक्षा यह है कि सम्यग्दृष्टिशब्दसे वीतरागसम्यग्दृष्टिका ग्रहण है। यह वीतराग सम्यग्दृष्टि अवस्था यथार्थमें ग्यारहवें आदि गुणस्थानोंमें होती है। यहां बन्ध होता नहीं है। सातावेदनीयका जो ईर्यापथ आस्रव होता है वह बन्ध नहीं कहलाता; क्योंकि वह स्थिति और अनुभागसे रहित होता है। तृतीय विवक्षा यह है कि चतुर्थ गुणस्थानसे लेकर दशम गुणस्थान तक सम्यग्दृष्टि जीवके जो बन्ध होता है वह, अनन्त संसारका कारण न होनेसे अबन्ध कहलाता है अथवा पिछले गुणस्थानोंकी अपेक्षा उपरितन गुणस्थानोंमें सम्यग्दृष्टि जीवके जो न्यून बन्ध होता है उसे ही अबन्ध कहा जाता है क्योंकि यहां नञ्का प्रयोग ईषत् अर्थमें है (ईषत् बन्धः अबन्धः)।

४ प्रश्न—सम्यग्दृष्टि जीवको अपने सम्यग्दृष्टि होनेकी पहिचान हो सकती है या नहीं ?

४ उत्तर—चरणानुयोग और द्रव्यानुयोगकी अपेक्षा सम्यग्दर्शन-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के जो लक्षण बतलाये हैं उनके अनुसार अपनी परिणतिका मिलान करने पर कहा जा सकता है कि मैं सम्यग्दृष्टि हूँ। परन्तु करणानुयोगकी अपेक्षा मिथ्यात्वादि सात प्रकृतियों का उपशम, क्षय या क्षयोपशम हमारे हुआ है या नहीं इसका निर्णय प्रत्यक्षज्ञानका विषय है।

५ प्रश्न—सम्यग्दृष्टिके भोग निर्जराके कारण किस प्रकार हैं ?

५ उत्तर—सम्यग्दृष्टि जीवके राग-द्वेष-मोह का अभाव होनेसे भोगकालमें भी निर्जरा होती है। पूर्वबद्ध कर्म अपना फल देकर निर्जीर्ण होते जाते हैं और नवीन बन्ध होता नहीं है, इसलिये सम्यग्दृष्टिके भोगोंको निर्जराका कारण कहा है। चतुर्थादि गुणस्थानोंमें जो बन्ध होता है वह अनन्त संसारका कारण न होनेसे विवक्षित नहीं है।

६ प्रश्न—योग्यता और स्वरूपमें क्या अन्तर है ?

६ उत्तर—कार्यरूप परिणत होनेकी जो सामर्थ्य है उसे योग्यता कहते हैं। योग्यता, द्रव्य और पर्यायकी अपेक्षा दो प्रकारकी होती है। द्रव्यकी योग्यता त्रैकालिक होती है और पर्यायकी योग्यता तत्समय रहती है। वस्तुकी उस विशेषताको स्वरूप कहते हैं जो अव्याप्ति आदि दोषोंसे रहित हो।

७ प्रश्न—व्रतीको निःशल्य कहा है, इसका अभिप्राय क्या है ?

७ उत्तर—व्रतीके निःशल्य होनेका अभिप्राय यह है कि मिथ्यात्व रहित, माया रहित और भोगाभिकांक्षासे रहित व्यक्ति ही व्रती हो सकता है। जिस प्रकार घी, दूध आदिकी पुष्कलता रखनेवाला व्यक्ति ही गोमान् कहा जाता है। मात्र अधिक संख्यामें गायें रखनेवाला गोमान् नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार निः-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शल्यव्रती ही व्रती कहा जा सकता है। मात्र व्रतोंको धारण करने-वाला व्रती नहीं कहा जा सकता।

८ प्रश्न—तप और चारित्रमें क्या विशेषता है ?

८ उत्तर—इच्छाओंके निरोधको तप कहते हैं और व्यवहारकी अपेक्षा अशुभसे निवृत्ति तथा शुभमें प्रवृत्ति एवं निश्चयकी अपेक्षा स्वरूपलीनताको चारित्र कहते हैं। तप, चारित्रकी सिद्धिमें कारण पड़ता है इस तरह तप साधन और चारित्र साध्य है।

९ प्रश्न—द्रव्यकी स्वतन्त्रताका क्या अर्थ है ?

९ उत्तर—एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप परिणमन नहीं करता, यह द्रव्यकी स्वतन्त्रताका अर्थ है। 'एक द्रव्य दूसरे द्रव्यकी परिणतिमें सहायक होनेसे निमित्त है' इस मान्यतासे द्रव्यकी स्वतन्त्रतामें कोई बाधा नहीं आती।

१० प्रश्न—धर्मध्यान और शुक्लध्यानका गुणस्थानोंमें अस्तित्व किस प्रकार है ?

१० उत्तर—चतुर्थगुणस्थानसे लेकर सातवें गुणस्थान तक धर्मध्यान होता है। अष्टमगुणस्थानसे लेकर ग्यारहवें गुणस्थान तक पृथक्त्ववितर्क विचार नामका पहला शुक्लध्यान, बारहवें गुणस्थानमें एकत्ववितर्क नामका दूसरा शुक्लध्यान, तेरहवें गुणस्थानके अन्तमें जब कि सिर्फ सूक्ष्मकाययोग रह जाता है तब सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती नामका तीसरा शुक्लध्यान और चौदहवें गुणस्थानमें व्युपरतक्रियानिवर्ती नामका चौथा शुक्लध्यान होता है।

वीरसेन स्वामीने रागांशका सद्भाव होनेसे दशम गुणस्थान तक धर्म्यध्यान माना है और उसके आगे शुक्लध्यान।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

११ प्रश्न—जब कि शुक्लध्यान '**शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः**' इस सूत्रके अनुसार पूर्वविदोंके होता है तब बारहवें गुणस्थानतक जघन्य-श्रुतज्ञानका परिमाण अष्टप्रवचनमातृका ज्ञान कैसे सिद्ध होता है ?

११ उत्तर—पूर्वविदोंके शुक्लध्यान होता है, यह उत्कृष्टताकी अपेक्षा कथन है, अनिवार्य कथन नहीं है।

सूचना—निमित्त, उपादान, निश्चयनयकी भूतार्थता, व्यवहार-नयकी अभूतार्थता, अस्तित्व, वस्तुत्वादि साधारणगुण, अन्तर्दृष्टि बहिर्दृष्टि आदिसे सम्बन्ध रखनेवाले प्रश्नोंके उत्तर विद्वानोंके प्रवचनोंमें गर्भित हो चुके हैं इसलिये यहाँ उनका संकलन नहीं किया गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi